पशुधन ज्ञान

वर्ष : प्रथम | अंक : 2 | जुलाई 2015 | अर्धवार्षिक, हिसार | शुल्क : 50/-

RNI Reg. No. HARHIN/2015/63352

प्रकाशक

विस्तार शिक्षा निदेशालय

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय

हिसार - 125004 (हरियाणा)

प्रकाशक
डॉ. सुधि रंजन गर्ग,
निदेशक, विस्तार शिक्षा निदेशालय
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय,
हिसार–125004 (हरियाणा)

सम्पादकीय दिशा निर्देशन
डॉ. सुधि रंजन गर्ग

सम्पादक
डॉ. देवेंद्र सिंह

सम्पादकीय सहायक
संतोष शर्मा

टंकन सहायक
सत्यवान

मुद्रक
मनोज प्रिंटिंग प्रैस
हिसार

निर्देश– इस पत्रिका में प्रकाशित सामग्री वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित है तथा लेखकों द्वारा पाठकों की जानकारी के लिए प्रस्तुत की गई है। सम्पादक, प्रकाशक तथा मुद्रक लेखकों के द्वारा दी गई जानकारी के लिए उत्तरदायी नहीं हैं। ब्रांडेड दवाइयों व उत्पादों के नाम केवल उदाहरण के रूप में दिए गए हैं तथा इन्हें विश्वविद्यालय की ओर से सिफारिश न माना जाए। पाठकों को यह सलाह दी जाती है कि किसी भी जानकारी को प्रयोग में लाते समय विशेषज्ञयों की सलाह लें। किसी भी त्रुटि के लिए सम्पादक से सम्पर्क किया जा सकता है। सभी विवादों का न्यायक्षेत्र हिसार न्यायालय होगा।

प्रकाशक डॉ0 सुधि रंजन गर्ग, निदेशक, विस्तार शिक्षा निदेशालय, लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार ने डॉ0 देवेन्द्र सिंह के सम्पादन में मनोज प्रिंटिंग प्रैस, हिसार से लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार के लिए मुद्रित करवाकर जुलाई, 2015 को प्रकाशित किया।

UNITED
Vet Care Pvt. Ltd.

United Vet Care Pvt. Ltd.

Innovational range of Veterinary Therapeutics

The strength that stands by

Cefrobact
Cefoperazone 3 gm + Sulbactam 1.5 gm
4.5 gm Injection

The Experts Choice for delayed growth & weakness.

Decaduravet
Nandrolone Decanoate 100 mg/ml
3 ml Injection

Add the power of Three.

Venuron
Methylcobalamin 500 mcg + Pyridoxine 50 mg + Nicotinamide 50 mg/ml
30 ml Injection

No need for Surgery in case of Odema

Frusivet
Furosemide 50 mg/ml
10 ml Injection

The energy booster

Ceetox
Ascorbic Acid 250 mg/ml
30 ml Injection

Products available at :

Hind Enterprises
Jain Gali, Hisar

Narang Medicals
Near G.V.H., Karnal

Pardeep Medical Hall
Near Bus Stand, Krukshetra

Erba Mannheim

TRANSASIA®

Introducing

Total Solutions for Critical Care Analysis

EBG Stat

pHOx® Ultra™

pHOx®

| pH | PCO_2 | $P0_2$ | S02% | Na^+ | K^+ | iCa | iMg | Cl | Gluc | Urea / BUN | Creat | Lac |

| Hct | Hb | O_2Hb | HHb | COHb | MetHb | tBil |

- Accurate stat measurement
- Advanced technology
- Easy to use
- Low maintenance

US FDA Cleared

Exclusive distributor of Nova Biomedical, USA

nova biomedical®

ERBA Diagnostics Mannheim GmbH
Mallaustrasse 69-73 68219 Mannheim, Germany
Telephone : (+49) 621 8799770 Fax : (+49) 621 8799688
Email : sales@erbamannheim.com Website : www.erbamannheim.com

TRANSASIA BIO-MEDICALS LTD.
Transasia House, 8 Chandivali Studio Road, Andheri (E), Mumbai - 400 072
Tel.: (022) 4030 9000, **Fax :** (022) 2857 3030 **Email** : transasia@transasia.co.in
Website : www.transasia.co.in **Twitter** :https://twitter.com/transasia_1

मेजर जनरल (डॉ.) श्रीकान्त
एस.एम., वी.एस.एम (सेवानिवृत)
कुलपति
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं
पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

संदेश

भूमि सम्पदा जहाँ एक वंश से दूसरे वंश के हाथों में आते–आते कम होती जाती है, पशुधन में ठीक उसके विपरीत निरंतर वृद्धि हो रही है। यही कारण था कि प्राचीन समय में सामाजिक और राजनैतिक स्तर पर पशुधन को उपहार स्वरूप दिया जाता था। हरियाणा राज्य में तो आज भी लोग विभिन्न अवसरों पर अपने स्वजनों को पशुधन भेंट में देते हैं, क्योंकि अन्य वस्तुएं जहाँ समय के साथ–साथ अपना अस्तित्व खो देती हैं, पशुधन में लगातार विकास होता है।

पशुपालन हमारी सभ्यता और संस्कृति में पारम्परिक रूप से विद्यमान है। गाँवों के देश भारत में ग्रामीण इलाकों में हर घर में पशुपालन किया जाता है। हरियाणा प्रांत को तो विशेष तौर पर दूध–दही के खान–पान से ही जाना जाता है। पशुपालन के बिना समाज की खाद्य आवश्यकता पूरी नहीं हो सकती। समय परिवर्तन के साथ घटते कृषि व्यवसाय को देखते हुए, जागरूक और परिश्रमी लोगों ने पशुपालन को व्यावसायिक रूप से अपनाया। ऐसे जागरूक किसानों से प्रेरणा लेकर बहुत से अन्य लोगों का भी रूझान इस व्यवसाय की ओर बढ़ रहा है। आज हरियाणा प्रदेश दुग्ध उत्पादन में अहम भूमिका निभा रहा है। दुग्ध उत्पादन के साथ–साथ अन्य पशु उत्पादों जैसे कि मॉस, अण्डा, मछली आदि में भी हरियाणा प्रदेश उन्नति की ओर अग्रसर है।

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय का स्थान पशुओं से संबधित शोध कार्यों में देशभर में अग्रणीय है। यहाँ पशुओं की उत्पाद क्षमता, गुणवत्ता और बीमारियों से बचाव जैसे विषयों पर लगातार नए–नए शोध होते रहते हैं। शोध कार्यों को विस्तार शिक्षा निदेशालय के माध्यम से जन–जन तक पहुँचाया जाता है। हमारे वैज्ञानिक विभिन्न माध्यमों जैसे कि प्रशिक्षण, किसान गोष्ठियों, पशु मेलों एवं प्रकाशित पाठ्य सामग्री के द्वारा इस उद्देश्य की पूर्ति करते हैं। आज समय की मांग है कि पशुपालक वैज्ञानिक विधियों को अपने व्यवसाय में अपनाएं।

यह अत्यन्त हर्ष का विषय है कि 'पशुधन ज्ञान' पत्रिका के द्वारा हमारे विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों के विचार, परामर्श व जानकारियां जन–जन तक पहुँचाई जा रही हैं। इस पत्रिका के वर्ष 2015 के द्वितीय अंक के प्रकाशन पर विस्तार शिक्षा निदेशक, पत्रिका के सम्पादक व विश्वविद्यालय के वैज्ञानिक प्रशंसा व बधाई के पात्र हैं। उनके सफल प्रयास से ही यह कार्य सम्पन्न हुआ है। निःसंदेह यह पत्रिका किसानों, पशुपालकों व पशु उत्पादों से सम्बंधित व्यावसायिओं को अत्याधिक रूप से लाभान्वित करेगी।

श्रीकान्त

डॉ. सुधि रंजन गर्ग
विस्तार शिक्षा निदेशक
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं
पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

संदेश

निरन्तर घट रही कृषि भूमि व समय–समय पर प्रतिकूल मौसम का प्रभाव किसानों की आर्थिक स्थिति को कमजोर कर रहे हैं। ऐसी विषम परिस्थितियों में पशुपालन किसानों को लगातार आय देने के साथ–साथ उन्हें आर्थिक रूप से सक्षम बनाता है। किसान के लिए खेती के साथ–साथ पशु पालन आज एक आवश्यकता बन गई है क्योंकि शीघ्र लाभ तथा लगातार आय का इससे बढ़िया विकल्प नहीं है। परन्तु लाभदायक होते हुए भी, वैज्ञानिक विधियों की जानकारी के अभाव में पशुपालक पूरा आर्थिक लाभ प्राप्त करने में असमर्थ रहते हैं। ऐसे में जरूरी है कि कृषक समाज को पशुपालन के क्षेत्र में हो रहे तकनीकी विकास की नवीनतम अच्छी जानकारी प्राप्त करवाई जाए।

कृषि के विविधिकरण पर आजकल बहुत बल दिया जा रहा है। कृषि के साथ–साथ पशुपालन, मुर्गी पालन, मछली पालन व पशुजन्य खाद्य पदार्थों के उत्पादन को बहुत बढ़ावा दिया जा रहा है। हरियाणा प्रांत ने अस्तित्व के बाद से ही पशुपालन के क्षेत्र में बहुत तरक्की की है, जिसमें प्रदेश के पशु चिकित्सा व पशु विज्ञान से संबंधित वैज्ञानिकों और उन्नतशील किसानों का बहुत बड़ा योगदान है। जागरूक पशुपालक वैज्ञानिक प्रणालियों का अत्याधिक लाभ उठा रहें हैं; परन्तु आज भी बहुत से पशुपालक ऐसे हैं जिन्हें पशुपालन का आधुनिक ज्ञान नहीं है।

आज के तकनीक से परिपूर्ण युग में केवल परम्परागत विचारों से कोई भी व्यवसाय पूर्ण विकास प्राप्त नहीं कर सकता। पशुपालन में उच्चतम कोटि के तकनीकी विकास को ध्यान में रख कर लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय की स्थापना हिसार में की गई। यह विश्वविद्यालय अत्याधुनिक प्रयोगशालाओं में पशुओं से सम्बन्धित समस्याओं पर अनुसंधान में कार्यरत है, जहां देश–विदेश से उच्च शिक्षा प्राप्त वैज्ञानिक पशुपालन के विकास के लिए व पशुपालकों की सहायता के लिए तत्पर हैं। इस विश्वविद्यालय के विस्तार शिक्षा निदेशालय के द्वारा 'पशुधन ज्ञान' पत्रिका का वर्ष 2015 का द्वितीय अंक पाठकों के हाथों में सौंपते हुए मुझे अपार प्रसन्नता हो रही है क्योंकि इसके द्वारा पशुधन व पशु उत्पाद से सम्बन्धित सूचनाएं और ज्ञान पशुपालकों के घर–घर पहुंचेगा। अतः मेरा अनुरोध है कि कृषक भाई–बहनें इस पत्रिका के माध्यम से पशुपालन के बारे में अपना ज्ञान बढ़ाएं व आस–पास के अन्य किसान–पशुपालकों को भी इस जानकारी से अवगत करवाएं। मैं विश्वविद्यालय के सभी वैज्ञानिकों और सहयोगी अधिकारियों का धन्यवाद करते हुए निवेदन करता हूं कि इस पत्रिका के द्वारा भविष्य में भी पशुपालकों को लाभान्वित करने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहें।

सुधि रंजन गर्ग

सम्पादक की कलम से...

पशुपालक भाईयों! आज मनुष्य को पृथ्वी का सबसे बुद्धिमान प्राणी कहा जाता है। इससे पहले वह भी अन्य प्राणियों की तरह जंगली जानवरों से बचता–बचाता ईधर–उधर घूमता था। उस समय भी वह पशुओं पर निर्भर था। पशुओं से ही उसने समूह में रहना सीखा होगा जब उसने हाथियों, बंदरों, हिरणों और कुत्तों की विशेष प्रजाति भेड़ियों आदि के झुण्डों को अन्य जानवरों से आत्म रक्षा करते देखा तो उसे लगा की मनुष्यों को भी समुदाय में रहना चाहिए। समुदाय में रहने के बाद ही मनुष्य ने पशुओं को पालना शुरू किया। तब से लेकर आज तक मनुष्य के जिज्ञासु स्वभाव ने उसे अन्य प्राणियों से बुद्धिमान होने का खिताब प्रदान कर दिया। समय के परिवर्तन के साथ पहिये के आविष्कार ने बैल–गाड़ी, घोड़ा–गाड़ी और आज तो सभी जानते है कि मनुष्य मंगल ग्रह पर पहुँच गया।

मानवीय सभ्यता के विकास में पशुओं ने प्रारम्भ से ही मनुष्य की खाद्य व्यवस्था को बनाए रखा है। समय के साथ–साथ बहुत कुछ बदला बस नहीं बदला तो केवल मनुष्य के जीवन में पशुओं की उपयोगिता।आज भी हम दूध–दही, मक्खन, पनीर, गोस्त, अंडे, ऊन आदि जीवन के लिए उपयोगी अन्य उत्पादों के लिए पशुओं पर निर्भर है। सच तो ये है कि यदि पशु पालन न हो तो हम केवल अनाज के द्वारा खाद्य व्यवस्था को सम्भाल ही न पाए। मौसम की विपरीत परिस्थितियों जैसे सूखा, बाढ़ आदि में भी पशुपालन ही एक मात्र सहारा है। वैसे भी पृथ्वी का परिमाप जनसंख्या के बढ़ते दबाव में बढने वाला नहीं ? कृषि भूमि कम हो चुकी है कम भूमि में कृषि के साथ पशुपालन एक सस्ता और सुलभ विकल्प है, जो किसानों के लिए आय का अच्छा साधन बन सकता है।

पशुपालन से लाभ कमाने के लिए मनुष्य को पशुपालन करने के प्राचीन रूढ़िवादी तरिकों से हटकर नया वैज्ञानिक तरिका अपनाना होगा। पशुपालन में ज्ञान और कौशल बढ़ाने के लिए भारत में बहुत से पशुपालन से संबंधित विश्वविद्यालय है जिनमें लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय हिसार भी अग्रणीय है। इस विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने पशुपालन से संबंधित बहुत से अनुसंधान किये है जो पशु प्रजनन, पशु नस्ल सुधार, पशु आवास, पशु आहार व घातक बीमारियों के निवारण से संबंधित है। इन शोधों के द्वारा जन–कल्याण ही उनका उद्देश्य है।

वैज्ञानिकों की आधुनिक सोच और तकनीक को आपके घर–घर पहुँचाने के उद्देश्य से उनके ज्ञान को पशुधन–पत्रिका के रूप में संचित कर दिया है। आपको यह जानकर खुशी होगी कि इस संचित ज्ञान को पशुधन–पत्रिका के द्वितीय अंक के रूप में आपके सम्मुख प्रस्तुत किया जा रहा है। इस पत्रिका में पशु नस्लों की जानकारी, नस्ल सुधार, पशु आवास प्रबंधन, पशु आहार प्रबंधन, विभिन्न मौसमों में पशुओं की देखभाल, घातक बीमारियों से बचाव, टीकाकरण, गर्भकाल में पशुओं की देखभाल, जीवाणु–विषाणु जनित रोग, मुर्गी पालन दुग्ध एवं मॉंस उत्पादन और जापानी बटेर पालन की नई जानकारी आदि विषयों पर बहुत सी नई जानकारी आप को मिलेगी। इस पत्रिका को पशुपालकों के लिए ज्ञान का पिटारा कहे तो कोई अतिश्योक्ति न होगी। पशुपालकों से एक निवेदन भी है इसमें बताई गई दवाईयों से संबंधित जानकारी का उपयोग करते समय चिकित्सक की सलाह अवश्य लें।

मुझे विश्वास है कि यह पत्रिका पशुपालकों किसानों और अन्य जो पशुपालन व्यवसाय से जुड़े है उनके लिए लाभप्रद सिद्व होगी। मैं इस पुस्तिका के पुनः प्रकाशन 'पशुधन पत्रिका' द्वितीयअंक हेतु कुलपति लुवास, विस्तार शिक्षा निदेशक, वैज्ञानिकगण एवं संपादक मंडल का हार्दिक धन्यवाद करता हूँ।

देवेन्द्र

विषय सूची

क्र.	विवरण	पृष्ठ संख्या
1.	अधिक उत्पादन वाली अच्छी नस्ल की दुधारू गाय का चुनाव	1
2.	गर्भकाल में भैंस की देखभाल	3
3.	गर्मियों व बरसात के मौसम में गाय–भैसों की देखभाल	5
4.	दुधारू पशुओं में प्रजनन, उत्पादन एवं उत्तम प्रबन्ध का महत्त्व	7
5.	पशुओं के मूल्यांकन हेतु स्कोर कार्ड विधि	11
6.	गर्मी में दुधारू पशुओं का बचाव कैसे करें	13
7.	दूध देने वाले पशुओं की कैसे करें देखभाल	15
8.	स्वच्छ दुग्ध उत्पादन का महत्त्व एवम् कुछ उपयोगी बातें	17
9.	पशु का भोजन तथा उसकी वर्गीकरण	19
10.	पशु आहार के तत्व	23
11.	बछड़े–बछड़ी व कटड़े–कटड़ियों की आहार व्यवस्था	25
12.	पशुओं का प्रमुख आपदाओं के दौरान प्रबन्धन	27
13.	मुर्गियों में बिछावन की भूमिका एवं महत्त्व	30
14.	एनाप्लाज्मोसिस–दुधारू पशुओं का घातक रोग	32
15.	बछड़ों में निमोनिया रोग	33
16.	पशुओं में पाचन संबंधी बीमारियाँ एवं उपचार	34
17.	पशुओं में अपच : कारण, लक्षण एवं रोकथाम	37
18.	कटड़ों/बछड़ों के दस्त, उपचार एवं रोकथाम	38
19.	कटड़ों में पेशाब का रूकना	40
20.	गाय भैंसों में सींग व पूंछ संबंधी मुख्य बीमारियाँ एवं उपचार	41
21.	दुधारू पशुओं में खुर–संबंधी बीमारियाँ एवं उपचार	43
22.	भेड़ चेचक–एक खतरनाक रोग	45
23.	उपचार के दौरान पशुओं को जमीन पर गिराने के तरीके	46
24.	पशु रोगों के निदान हेतु की जाने वाली जांचें	47
25.	पशु पालन – स्वास्थ्य एवं टीकाकरण की जानकारी	49
26.	पशुओं में रोगों की रोकथाम हेतु व्यवहारिक सुझाव	51
27.	पशुओं से मनुष्यों को लगने वाली बीमारियाँ व बचाव	54
28.	पशु पालन में एंटिबायोटिक दवाओं का दुरूपयोग : समस्या व समाधान	56
29.	पशुओं में मुख्य चयापचयी एवं अल्पता रोग	59
30.	जापानी बटेर – एक नया व्यावसायिक प्रारूप	62

अधिक उत्पादन वाली अच्छी नस्ल की दुधारू गाय का चुनाव

संदीप कुमार सांगवान एवं सुरेंदर सिंह ढाका

पशु अनुवांशिकी एवं प्रजनन विभाग

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

अधिक उत्पादन देने वाली दुधारू गाय का चुनाव

जब कोई नया पशु खरीदा जाता है तो उसे उसकी नस्ल से करीबी (ब्रीड प्यूरिटी) और दुग्ध उत्पादन की क्षमता के आधार पर परखा जाता है। दुधारू गायों के लिए चुनाव एक या दो बार प्रजनन के पश्चात की गायों में से ही होना चाहिए क्योंकि अधिकतम उत्पादन प्रथम पाँच प्रजनन के दौरान होता है। बरसात के मौसम मे अच्छा हरा चारा उपलब्ध होता है और ज्यादातर पशु बरसात में या बरसात से पहले ही बच्चे को जन्म देते हैं। प्रतिदिन अधिकतम दूध उत्पादन पहुँचने में कम से कम 45 दिन लग जाते हैं। पशु का अधिकतम दूध उत्पादन प्रजनन के 90 दिनों तक नापा जाता है जिसके चलते ज्यादातर किसान दुधारू जानवर को अक्टूबर व नवंबर माह में खरीदना पसंद करते हैं। दुधारू गाय के चुनाव के लिए पशुपालक किसान को निम्न बिंदुओं को ध्यान में रखना चाहिए :–

1. उम्रद्राज पशु की खरीद से बचने के लिए किसान को पशु की सही उम्र का आंकलन उसके दांतो व सीगों के आकार और शरीर की स्थिति द्वारा करना आना चाहिए क्योंकि एक सही उम्र का पशु लम्बे समय तक उत्पादन के साथ–साथ ज्यादा वंशज पैदा करता है।
2. खरीदा जाने वाला पशु उसकी नस्ल के सभी गुणों से परिपूर्ण होना चाहिए तथा उसमें कोई विकृति नहीं होनी चाहिए। गाय को अच्छे कृषि फार्मों से ही खरीदना चाहिए तथा उसकी इतिहास और वंशावली (हिस्टरी व पेडिग्री शीट) को भी चुनाव में एक आधार बनाना चाहिए।
3. गाय के सांड तथा माँ की प्रजनन मूल्य (ब्रीडिंग वैल्यू) या उत्पादन क्षमता का पता होना चाहिए। अगर इतिहास और वंशावली का रिकार्ड उपलब्ध न हो तो पिछले मालिक से उसके पिछले सालों का उत्पादन तथा उसके पूर्वजों की उत्पादन क्षमता के बारे में जरूर पूछना चाहिए। खरीदी जाने वाली गाय के पूर्वज कुलीन होने चाहिए।
4. गाय शारीरिक रूप से स्वस्थ और आज्ञाकारी होनी चाहिए। कोई एक विश्वसनीय आदमी को साथ मे जरूर ले जाएँ जो गाय से दूध निकालने में सक्षम हो और गाय को भी नियंत्रण में रख सके।
5. मादा जानवर के शरीर का आकार त्रिभुजनुमा होना चाहिए जिसमे उसकी गर्दन पतली तथा शरीर का पिछला हिस्सा चोड़ा होना चाहिए। आकर्षक मादाजनित गुणों के साथ–साथ सभी अंगों में समानता व सामजस्य होना चाहिए। पशु की आंखें व त्वचा चमकदार और मज्जेल गीला होना चाहिए।
6. पशु के थन पेट से सही तरीके से जुड़े हुए होने चाहिए। पशु के चारों थन अलग–अलग व चूचक सही होने चाहिए। थनैला रोग से ग्रस्त गाय की खरीद से बचने के लिए किसान को यह भी सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि थनों में किसी प्रकार की कोई सूजन नहीं होनी चाहिए और गाय का दूध निकालते समय पैर नहीं मारती हो। थनों की रक्त वाहिनियों की त्वचा पर बनावट सही होनी चाहिए क्योंकि मिल्क वेन की बनावट दूध उत्पादन क्षमता को प्रदर्शित करती है।
7. दूध उत्पादन मापन की शुरूवात करने से पहले सायंकाल में पशु किसान सम्बंधित गाय के थन खाली अपनी निगरानी में करवाएं तथा उसके बाद लगातार तीन दिन दूध निकाल

कर प्रतिदिन की औसत के आधार पर उसकी दूध देने की क्षमता का आंकलन करना चाहिए।

8. लंगड़ी गाय की खरीद से बचने के लिए किसान को ध्यान रखना चाहिए कि गाय खरीदते समय कि गाय को उठनें, बैठनें और चलनें में दिक्कत नहीं हो। पशुपालक गाय खरीदते समय त्वचा सम्बन्धी रोगों से बचने के लिए ध्यान दें कि गाय दीवार या खुर द्वारा शरीर पर खुजली नहीं कर रही हो। किसान को नयी गाय अपने पशुओं के झुण्ड में शामिल करने के पहले यह भी ध्यान रखना चाहिए की गाय के बाहरी परजीवी जैसे कि चिचड़ आदि ना हो।

9. किसान को यह ध्यान रखना चाहिए कि गाय के किसी हिस्से पर मिट्टी तो नहीं लगी हुई, अगर मिट्टी लगी हुई हो तो उसे उतार के देखना चाहिए क्योंकि मिटटी का प्रयोग पशु के पुराने दाग या ज़ख्म को छुपाने के लिए प्रयोग करते हैं।

10. गाय की कीमत उसकी नस्ल शुद्धता, शारीरिक गुणों तथा उत्पादन क्षमता के आधार पर निर्धारित करनी चाहिए।

सही नस्ल के चुनाव के लिए सुझाव

नये डेयरी फार्म में आर्थिक स्थिति के अनुसार जानवर होने चाहिए। व्यावसायिक डेरी शुरू करते समय 10 गाय के फार्म से शुरूवात की जा सकती है। इसके पश्चात् बाजार के आधार पर आगे बढ़ाने के बारे में सोचना चाहिए। स्वास्थ्य के प्रति जागरूक मध्य वर्गीय भारतीय जनमानस सामन्यतः कम वसा वाला दूध ही लेना पसंद करते हैं इसके चलते व्यावसायिक फार्म का मिश्रित स्वरूप उत्तम होता है। इसमें संकर नस्ल और देसी गायें एक ही छप्पर के नीचे अलग–अलग पंक्तियों में रखी जा सकती है। अच्छी नस्ल व गुणवत्ता की गाय की कीमत 2500 से 3000 रूपये प्रति लीटर होती है। उदाहरण के लिए 10 लीटर प्रतिदिन दूध देने वाली गाय की कीमत 25000 से 30000 तक की होगी। भारतीय मौसम की परिस्थितियों में होलेस्टिन व जर्सी का संकर नस्ल सही दुग्ध उत्पादन के लिए उत्तम साबित हुए है। संकर नस्ल की गाय के दूध में वसा की मात्रा देशी गाय के दूध से कम होती है। दूध उत्पादन के लिए दुधारू नस्ल (साहिवाल, लाल सिंधी, गीर और थारपकर) या खेतों में हल चलाने व बैलगाड़ी खींचने के अनुरूप पशु जुताई वाली नस्ल (अमृतमहल, हल्लीकर और खिल्लार) या दोनों गुणों वाली नस्ल (हरियाणा, ओन्गोले, कंकरेज और देओनी) या विदेशी नस्ल (जर्सी या होल्स्टेन फेशियन) या विदेशी नस्लों के विभिन्न शंकर (फ्रिएस्वाल, कारन स्विस, करन फ्राइस और हरधेनु) उपलब्ध है। पशु किसान को अपनी जरूरत के अनुरूप, उपलब्धता, पर्यावरण के अनुरूप (जो स्थानीय गर्मी और सर्दी) तथा कीमत के आधार (पशुपालक की गाय खरीदने की क्षमता) पर गाय पालनी चाहिए जोकि उसकी अधिकतर आवश्यकताओं को पूरा करे। अपने पर्यावरण के अनुकूल पशु की नस्ल के बारे में अधिक जानकारी स्थानीय पशु चिकित्सक से संपर्क कर प्राप्त की जा सकती है।

— □ —

गर्भकाल में भैंसों की देखभाल

विशाल शर्मा एवं देवेन्द्र बिडान

पशु उत्पादन एवं प्रबंधन विभाग
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

पशुपालन व्यवसाय में अधिक लाभ प्राप्त करने के लिए भैंसों का नियमित अंतराल पर ब्याना आवश्यक है। पशुओं के स्वास्थ्य तथा संतुलित आहार का जन्म से ही समुचित ध्यान रखने से वह कम उम्र में ही गर्भाधारण करवाने पर जल्दी बच्चा देने योग्य हो जाती है। अतः भैंस की आहार व्यवस्था तथा रखरखाव उत्तम होना चाहिए। पशु अपने सूखे समय के दौरान दूध उत्पादन के समय पोषक तत्वों तथा गर्भ में पलने वाले बच्चे के पोषण की जरूरते पूरी करते हैं। ब्याने से पहले मिले अतिरिक्त पोषक तत्व को पशु के शरीर में जमा हो जाते है जिनका उपयोग ब्याने के पश्चात दूध उत्पादन में होता है।

भैंस का गर्भकाल लगभग 310 दिन का होता है। गाभिन पशु के गर्भ का विकास 6–7 माह के दौरान तेजी से होता है तथा बच्चे के शरीर के बढ़ने के साथ भैंस के शरीर में विशेष परिवर्तन स्पष्ट दिखाई देते है। मद चक्र का रूक जाना, पेट का आकार बढ़ना, शरीर का भार बढ़ना आदि गर्भावस्था के लक्षण है।

गर्भावस्था में भैंसों के देखभाल के लिए निम्नलिखित बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिए–

1. 6–7 माह के गाभिन पशु को चरने के लिए ज्यादा दूर तक नहीं ले जाना चाहिए।
2. भैसों को दौड़ाने से बचाना चाहिए तथा ऊबड़–खाबड़ रास्तों पर नहीं घुमाना चाहिए।
3. भैंस को फिसलने वाली जगह से बचाना चाहिए तथा फर्श पर घास–फूस आदि बिछाकर रखना चाहिए।
4. गाभिन पशुओं को विशेषकर गर्भकाल के अंतिम 3 माह में जोहड़ में नहीं ले जाना चाहिए।
5. गाभिन भैंस को अन्य पशुओं से लड़ने से बचाना चाहिए।
6. गाभिन भैंसों को उचित व्यायाम करवाना चाहिए।
7. यदि संभव हो तो गाभिन भैंसों को अन्य पशुओं से अलग रखना चाहिए ताकि उनकी देखभाल अच्छी प्रकार से हो सके।
8. संक्रामक रोगों से बचाने के लिए बीमार पशु को गाभिन भैसों से दूर रखना चाहिए।
9. गाभिन पशु के आवास से गोबर, मूत्र आदि की अच्छे से सफाई कर उन्हें बाड़े से दूर डालना चाहिए।
10. पशु के उठने बैठने के लिए पर्याप्त स्थान होना चाहिए। पशु जहाँ बंधा हो, उसके पीछे के हिस्से का फर्श कुछ ऊँचा होना चाहिए।
11. पीने के लिए स्वच्छ व ताजा पानी हर समय उपलब्ध होना चाहिए।
12. गर्भकाल के अंतिम 3 माह में अतिरिक्त पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है जो ब्याने के बाद दूध उत्पादन में सहायक होते हैं।
13. गर्भकाल में ऊर्जा और प्रोटीन की आवश्यकता ब्यांत तथा गर्भकाल की अवस्था पर निर्भर करती है। गर्भकाल के आरम्भ में अतिरिक्त ऊर्जा और प्रोटीन की जरूरत नहीं होती परन्तु मध्यकाल में अतिरिक्त ऊर्जा और प्रोटीन की आवश्यकता होती है जो की अंतिम 3 माह में बढ़कर और अधिक हो जाती है।

14. गाभिन भैंस को आहार में एक किलोग्राम दाने के साथ एक प्रतिशत अतिरिक्त नमक व खनिज मिश्रण देना चाहिए।

15. गाभिन पशु को पोषक आहार की आवश्यकता होती है जिससे ब्याने के समय दुग्ध–ज्वर और किटोसिस जैसे रोग न हो तथा दुग्ध उत्पादन पर भी प्रभाव न पड़े।

16. गर्मी के मौसम में भैंस को तेज धूप से बचाना चाहिए तथा 3–4 बार नहलाना चाहिए।

17. दूध देने वाली भैंसों का ब्याने से 2 महीने पहले दूध निकालना बंद कर देना चाहिए अन्यथा बच्चे कमजोर पैदा होगें और अगले ब्यांत में पशु दूध कम देगा। इसके अलावा भैसों की प्रजनन क्षमता भी प्रभावित होती है।

18. गाभिन भैंस को हरा चारा प्रचुर मात्रा में उपलब्ध कराना चाहिए।

19. गाभिन भैंस की आहार व्यवस्था इस प्रकार की होनी चाहिए की उसे कब्ज की शिकायत नहीं रहनी चाहिए। कब्ज होने पर अलसी के तेल का इस्तेमाल किया जा सकता है।

20. जिन पशुओं का गर्भ गिर गया हो, गाभिन भैंसों की उनसे उचित दूरी बनाकर रखनी चाहिए।

21. ब्याने के 4–5 दिन पूर्व गाभिन पशु को अलग स्थान पर बांधना चाहिए। ध्यान रहे की स्थान स्वच्छ, हवादार व रोशनी युक्त होना चाहिए। पशु के बैठने के लिए फर्श पर सुखा चारा डालकर व्यवस्था बनानी चाहिए।

22. ब्याने से 1–2 दिन पहले से पशु पर लगातार नज़र रखनी चाहिए।

23. किसी भी आपात स्थिति से निपटने के लिए पशु चिकित्सक से सम्पर्क करें।

गर्भावस्था में भैंस की उचित देखभाल का प्रभाव बच्चे व भैंस के स्वास्थ्य तथा उसके दूध उत्पादन पर भी पड़ता है। अतः गाभिन भैंस के लिए आहार व अन्य व्यवस्थाएँ अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

— □ —

गर्मियों व बरसात के मौसम में गाय या भैंसों की देखभाल

देवेन्द्र बिडान एवं दिपिन चंद्र यादव

पशु उत्पादन एवं प्रबंधन विभाग
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

गर्मियों के मौसम में गाय–भैसों की देखभाल

उत्तर भारत में मई से लेकर जुलाई तक भीषण गर्मी पड़ती है। वातावरण में तापमान 40 डिग्री सै. से लेकर 45 डिग्री सै. तक रहता है। पशुओं में उच्च उत्पादन, कम तनाव व अधिक गर्भाधान के लिए 17–28 डिग्री सै. तापमान होना चाहिए। गर्मियों में अत्याधिक तापमान के कारण पशुओं की प्रजनन क्षमता एवं दुग्ध उत्पादन कम हो जाता है। भैसों के शरीर का रंग काला होने के कारण उन्हें अधिक गर्मी लगती है। कई बार अधिक देर तक उच्च तापमान में रहने के कारण पशु के शरीर का तापमान 105 से 108 डिग्री फारनहाईट तक हो जाता है जो की सामान्य तापमान से काफी ज्यादा है। वैज्ञानिक भाषा में इसको हाइपरथर्मिया कहा जाता है। इससे पशु की श्वसन दर बढ़ जाती है तथा उचित समय पर चिकित्सा सुविधा न मिलने के कारण पशु के मरने की संभावना बढ़ जाती है। इसलिए गर्मियों में पशुओं को बाहर कड़कती धूप में ज्यादा देर नहीं रखना चाहिए। गर्मी में पशुओं को राहत पहुँचाने के उद्देश्य से कुछ ध्यान देने योग्य बातें निम्नलिखित हैं–

1. पशुओं का शेड खुला व हवादार होना चाहिए तथा शेड की छत ऊँची होनी चाहिए।
2. पशुओं को हरे–भरे पेड़ के नीचे बांधना चाहिए।
3. पशुओं के शेड की दिशा पूर्व से पश्चिम की तरफ होनी चाहिए।
4. शेड में फव्वारा पद्धति का प्रयोग किया जा सकता है।
5. पशुओं के पीने का पानी ठण्डा होना चाहिए। पीने के पानी की टंकी छायादार जगह पर होनी चाहिए।
6. अगर शेड की छत टीन की बनी है तो उस पर पराली आदि डाल देनी चाहिए ताकि शेड के अंदर का तापमान कम रहे।
7. गर्मियों में पशुओं को आहार सुबह जल्दी तथा शाम को या रात को देना चाहिए।
8. पशु को संतुलित व पौष्टिक आहार देना चाहिए तथा आहार में खनिज मिश्रण अवश्य होना चाहिए।
9. गर्मियों में भैंसे मद के दौरान ज्यादातर केवल तार देती है व बोलती नहीं है। इसलिए सुबह व शाम पशु को देखना चाहिए की पशु मद में है या नहीं।
10. गर्मियों में हरे चारे की कमी रहती है। इसलिए इसकी उपलब्धता सुनिश्चित कर लेनी चाहिए तथा हरे चारे का संरक्षण कर 'हे' या 'साइलेज' का प्रयोग भी किया जा सकता है।
11. गर्भ के अंतिम तिमाही में पशुओं को जोहड़ में नहीं ले जाना चाहिए।
12. पशुओं के बाड़े में डेजर्ट कूलर का प्रयोग किया जा सकता है।
13. विदेशी नस्ल व संकर प्रजाति की गायों में अत्याधिक तापमान के कारण दुग्ध उत्पादन में भारी कमी आ जाती है। इसलिए उन्हें उष्मीय तनाव से बचाना चाहिए तथा गर्मी से बचाने के लिए कूलर, फव्वारा इत्यादि का प्रयोग करना चाहिए।

उपरोक्त बताई गई बातों को ध्यान में रखते हुए पशुपालन किया जाए तो गर्मियों में भी पशुओं में प्रजनन क्षमता बनाये रख सकते हैं तथा उनसे उच्च उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं।

बरसात के मौसम में गाय–भैसों की देखभाल

बरसात के मौसम में बारिश के कारण व उच्च तापमान के कारण, वातावरण में आद्रता बढ़ जाती है। आद्रता के कारण पशु अपने आप में तनाव महसूस करते हैं। बरसात के मौसम में पशुओं में गलघोंटू व मुँह–खुर नामक बीमारी हो सकती है जिसके कारण पशुओं की अचानक मृत्यु हो जाती है। इसलिए अपने पशुओं को इन बीमारियों का टीकाकरण अवश्य करवाना चाहिए। बरसात के मौसम में शेड में पानी नहीं भरना चाहिए तथा बाड़े की नालियाँ साफ सुथरी रहनी चाहिए। बाड़े की सतह सुखी व फिसलन वाली नहीं होनी चाहिए।

लगातार गीले होने के कारण पशुओं के खुरों में संक्रमण होने की संभावना अधिक रहती है, इसलिए सप्ताह में एक या दो बार हल्के लाल दवाई के घोल से पशुओं के खुरों को साफ करना चाहिए। ज्यादा नमी के कारण पशु आहार में फफूँद लगने की संभावना बढ़ जाती है तथा ऐसा आहार खाने से पशु बीमार हो सकते हैं।

पशुओं के बाड़े की छत से पानी नहीं टपकना चाहिए तथा बाड़े के आसपास पानी का ठहराव नहीं होना चाहिए। गंदे पानी व स्थानों पर मच्छर व मक्खी पनपते हैं जो की बीमारियों के प्रवाहक है। इनके रोकथाम के लिए केरोसिन का तेल, पानी वाले गड्ढों में डाला जा सकता है। पशुओं को समय–समय पर आंतरिक व बाह्य परजीवियों से चिकित्सीय परामर्श द्वारा मुक्त रखना चाहिए। पशु के बीमार होने पर तुरंत पशु चिकित्सक की सलाह लेनी चाहिए।

— □ —

दुधारू पशुओं में प्रजनन, उत्पादन एवं उत्तम प्रबन्ध का महत्त्व

अभय सिंह यादव एवं विक्रम जाखड़

पशु अनुवांशिकी एवं प्रजनन विभाग
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

हरियाणा चिरकाल से अपने उत्तम एवं दुधारू पशुधन के कारण राष्ट्र के स्वास्थ्य एवं आर्थिक विकास का मूल आधार रहा है, क्योंकि यह राज्य मुख्यतः ग्रामीण जीवन पर आश्रित है तथा इसका विशेष कारण कृषि एवं पशुपालन है। यहाँ का अनमोल पशुधन, सारे भारत वर्ष तथा संसार में अपने गुणों के कारण प्रसिद्ध है। इसीलिए विदेशों में हमारे दुधारू पशुओं, और शक्तिशाली मुर्राह भैंस व साहीवाल गाय की मांग निरन्तर बनी हुई है। हरियाणा की कहावत 'देसां मा देस हरियाणा, जित दूध दही का खाणा' प्रसिद्ध है और प्रमाणित करती है कि राज्य में दूध, दही की नदियां बहती रही है। इस राज्य में प्रति व्यक्ति दूध उपलब्धता 660 ग्राम है जबकि समूचे देश में 210 ग्राम प्रति व्यक्ति दूध मिलता है।

इन तथ्यों से प्रमाणित होता है कि हमारे राज्यों के कर्मठ किसान व पशुपालकों को इस प्रगति का श्रेय जाता है। जो विश्वविद्यालय एवं पशुपालन विभाग हरियाणा द्वारा चलाई जा रही विभिन्न आधुनिक तकनीकि योजनाओं को बढ़–चढ़ कर व सहयोग देकर अपना रहे है। विश्वविद्यालय द्वारा पशु प्रजनन, आधुनिक आवास प्रबन्धन, पौष्टिक हरा चारा तथा पशु चारा उत्पादन एवं विभिन्न बीमारियों की रोकथाम सम्बन्धी योजनाओं के कारण उल्लेखनीय प्रगति के परिणाम नजर आ रहे है। दुधारू पशुओं से अधिक उत्पादन एवं आर्थिक लाभ प्राप्त करने के लिए व्यवस्था को मुख्यता तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है।

1. उत्तम प्रजनन व्यवस्था
2. उत्तम देखभाल एवं आवास व्यवस्था
3. उत्तम चारे एवं दाने का प्रबन्ध

1. उत्तम प्रजनन व्यवस्था

पशुपालक को सर्वप्रथम निर्णय लेना चाहिए कि वह किस नस्ल का पशु पालना चाहता है, जैसे अधिक दूध देने वाला या अच्छे बैल या दोनों का ही मिश्रण अर्थात दूध का उत्पादन भी ठीक–ठीक हो एवं बैल भी अच्छा हो। अधिक दूध देने वाली देसी नस्ल की साहीवाल, थारपारकर, गिर, सिन्धी आदि गायें है। विदेशी नस्ल की 'होलस्टीन' फ्रीजियन, ब्राउन स्विस, रेड डेन एवं जर्सी गायें है। हरियाणा तथा अंगोल नस्ल की गायें दूध देने में तथा बैल पैदा करने में औसत दर्जे की मानी गई हैं। भैसों में हरियाणा की मुर्रा तथा पंजाब की नीली रावी नस्लें सबसे अधिक दूध देने वाली जानी जाती हैं जबकि गुजरात की सूरती एवं जाफ्राबादी नस्लों में दूध में चिकनाई की मात्रा काफी अधिक पाई जाती है, परन्तु दूध कुछ कम होता है। विदेशी नस्लों की गायें, हरियाणा गाय की अपेक्षाकृत 8–10 गुना तक अधिक दूध देने वाली होती है। यदि विदेशी नस्लों के सांडों के वीर्य से हरियाणा गाय को गर्भित कराया जाये तो 3 से 4 गुना तक अधिक दूध दे सकती है बशर्ते कि उनकी अधिक खुराक उपलब्ध हो एवं उचित देखभाल की जाए।

विदेशी नस्लों के सांडों के वीर्य की व्यवस्था हरियाणा के लगभग सभी पशु चिकित्सालयों में सरकार ने की हुई है। किसान भाइयों को इस सुविधा का दुधारू पशु पैदा करने के लिए अधिक से अधिक लाभ उठाना चाहिए।

संकर नस्ल की गायें में विदेशी नस्ल का अंश लगभग 50 से लेकर 62 प्रतिशत तक उपयुक्त पाया गया है। तीन चौथाई से अधिक विदेशी नस्ल का अंश होने से अधिक बीमारी लगने

का खतरा तो रहता ही है। इसके अलावा विपरीत वातवरण सहन करने की क्षमता भी कम हो जाती है। जहां तक सम्भव हो, ऐसी दो विदेशी नस्लों का अपने संकर पशुओं में अंश न आने दें जो कि दोनों ही शारीरिक रूप से भारी हो जैसे कि होलस्टीन प्रीजिएन एवं ब्राउन स्विस। इन दोनों के मिश्रण से पैदा हुई संकर गाय के बांझ होने की संभावना बढ़ जाती है। संकर नस्ल की गायें आमतौर पर प्रतिदिन 15 से 20 लीटर तक दूध दे देती है। ये गायें दो–ढाई वर्ष की आयु में ही नयी हो जाती है तथा दो ब्यांत के मध्य का समय भी देसी गायों की अपेक्षाकृत काफी कम है। संकर नस्ल की गायें एवं बछिया लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार, राजकीय पशुधन फार्म, हिसार एवं राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान, करनाल से समय–समय पर किसानों को उपलब्ध कराई जाती है।

दुधारू पशु खरीदते समय ध्यान देने वाली बातें

दुधारू पशु खरीदते समय निम्नलिखित बातों पर ध्यान रखा जायें तो इसमें डेरी फार्म में सफलता की सम्भावना बहुत ज्यादा हो जाती हैः–

क) नस्ल का चयन बड़े सोच–विचार से करना चाहिए जो आपके क्षेत्र के लिए कामयाब हो और यदि हरा चारा उपलब्ध हो तो संकर नस्ल की गायों का चयन कर सकते हैं अन्यथा देसी नस्ल की गायें व मुर्रा भैंस ही रखनी चाहिए।

ख) पशु खरीदते समय दूध उत्पादन का माप कम से कम लगातार तीन समय अवश्य देखें, क्योंकि पशु बेचने वाले कई बार एक समय दूध छोड़कर निकाल देते हैं या चीनी इत्यादि खिलाकर दूध बढ़ा देते हैं।

ग) गाय–भैंस के थन तथा लेवटी भारी होनी चाहिए। थन लम्बे तथा बराबर होने चाहिए। गाय के अगले थन बड़े व पीछे के छोटे तथा भैंस के थन पीछे के बड़े व अगले छोटे होने चाहिए। चारों थन एक दूसरे से बराबर दूरी पर होने चाहिए तथा रबड़ की तरह मुलायम होने चाहिए। थन छोटा–मोटा व लेवटी सख्त हो या उस पर हाथ लगाने से गाय को कष्ट हो तो पशु को थनैला का रोग हो सकता है। ऐसी गाय न खरीदें। अन्यथा एक बार ऐसी गाय आने पर दूसरे स्वस्थ्य पशुओं में भी यह बीमारी फैल सकती है।

घ) पशु के शरीर की बनावट का ध्यान रखना चाहिए। उसका शरीर ज्यादा भारी न हो। गाय सिर की तरफ से छोटी और पैरों की तरफ से बड़ी दिखाई देनी चाहिए। इस तरह त्रिकोण बन जाना चाहिए गाय की गर्दन पतली व लम्बी हो तथा कंधे दिखने में सुन्दर व सुडौल होने चाहिए। गाय के पैर सीधे होने चाहिए। गाय के सारे अंग साफ–सुथरे होने चाहिए। आँखे साफ तथा नथुने चमकीले व गोले होने चाहिए।

ड़) मादा पशु हमेशा पतली चमड़ी का होना चाहिए तथा कम उम्र का तथा पहली या दूसरी ब्यांत का हो। गाय–भैंस ऐसी होनी चाहिए कि ब्याने के लगभग दो महीनें पहले तक दूध देती हो तथा हर साल ब्याने वाली हो।

च) सींगों को देखकर पशु की उम्र का अनुमान न लगायें। दांतों को देखकर पशु की उम्र का अनुमान लगायें तथा दाँतों की पूरी जानकारी प्राप्त करें।

छ) पशु की बीमारियों के बारें में ठीक से जाँच करवा लेनी चाहिए जैसे टी.बी., ब्रुसलोसिस व जोंडिस जो कि घातक बीमारियां है तथा अन्य पशुओं को लगने का भय रहता है।

इन सभी बातों को ध्यान में रखने से पशुपालक अच्छे जानवर का चयन करके खरीदने से, अपना लाभ व व्यापार अधिक बढ़ा सकता है।

2. उत्तम देखभाल एवं आवास व्यवस्था

एक गाय के लिए छत युक्त फर्श का क्षेत्रफल 3 वर्ग मी. तथा खुले हुए फर्श का क्षेत्रफल 7 वर्ग मी. तथा एक भैंस के लिए क्रमशः 4 वर्ग मी. एवं 8 वर्ग मी. होना चाहिए। प्रति पशु खोर की लम्बाई 60–75 सें.मी. चौड़ाई 75 सें.मी. एवं अन्दर की गहराई 40 सें.मी. होनी चाहिए।

खोर की अन्दर की दीवार की ऊंचाई 60 से.मी. और बाहर की दीवार 1 मी. ऊंची होनी चाहिए जिससे चारा या दाना आसानी से बाहर से ही खोर में डाला जा सके।

दुधारू पशुओं की देखभाल के लिये कुछ विशेष बातों का ध्यान रखना जरूरी है जैसे–

क) दुधारू पशु के गर्भाधान होने पर अन्तिम डेढ से दो माह के लिए दूध निकालना अवश्य बंद कर देना चाहिए अन्यथा उसके बच्चे की सेहत के अलावा अगली ब्यांत के दूध उत्पादन पर भी खराब असर पड़ेगा।

ख) अपने दुधारू पशुओं को गंदे तालाब या जोहड़ का पानी न पिलायें। इससे कई संक्रामक रोग लग सकते हैं। अपने पशु के थोड़ा सा बीमार होने पर पशु चिकित्सक की सहायता से ही चिकित्सा करनी चाहिए। संक्रामक व छूआछूत के रोगों की रोकथाम के लिए पशुओं को समय से ही टीका अवश्य लगवाने का प्रबन्ध करना चाहिए।

ग) पूरे हाथ से दूध दुहने की आदत डालनी चाहिए। अंगूठे से दूध दुहने पर थनों में गांठे व अन्य खराबी आ सकती है।

घ) अपने कीमती दुधारू पशुओं का बीमा अवश्य करायें। इसकी सुविधा अब सरकार की ओर से उपलब्ध है। आजकल पशु पालन विभाग, हरियाणा सरकार द्वारा एक उपयोगी योजना बेरोजगार पढ़े लिखे किसान विशेषकर नौजवानों के लिए शुरू की गई है। बेरोजगार युवकों को पशु चिकित्सा विश्वविद्यालय का विस्तार शिक्षा निदेशालय समय–समय पर डेरी फार्मिंग की ट्रेनिंग करवा रहा है। जिसका किसान पूरा–पूरा लाभ उठाने की कोशिश करें।

ड़) सबसे महत्त्वपूर्ण बात ध्यान रखने योग्य यह है कि पशुओं के बाड़े, पशुओं को तथा स्वयं को अधिक से अधिक साफ–सुथरा रखना चाहिए। दूध दुहने से पहले अपने हाथों को कलोरीन आदि से धोने से कीटाणु रहित बनाने के लिये साफ करना चाहिए जिससे स्वच्छ दुग्ध उत्पादन में काफी मदद मिलेगी।

हमारे पशु आमतौर पर विशेष मौसम में ही ब्याते हैं, जिसका दूध की सप्लाई पर बहुत बुरा असर पड़ता है। सर्दियों के मौसम में दूध काफी अधिक हो जाता है। जबकि गर्मियों में बहुत ही कम दूध उपलब्ध हो पाता है। हमारे पशु वर्ष के सभी महीनों में समान रूप से दूध दें, इसके लिए आवश्यक है कि उन्हें उचित खुराक एवं प्रबन्ध द्वारा वर्ष के सभी महीनों में आवश्यकतानुसार गर्भित करा सकें। जो निम्नलिखित बातों पर मुख्यतया निर्भर करता है–

दुधारू पशुओं के लिए हर समय उचित मात्रा में हरा चारा उपलब्ध होना चाहिए। यह सही फसल चक्र द्वारा जिसमें हरे चारे की वार्षिक फसलों के अलावा बहुवर्षीय घास जैसे कि सूडान, घास, पैरा घास, नैपियर घास का समावेश हो, एवं सूखा हरा चारा अथवा 'हे' तथा 'सुरक्षित हरा चारा' अथवा साईलेज द्वारा संभव है। यदि उपरोक्त हरे चारें का किन्ही कारणवश प्रबन्ध न हो सके तो रोवीऐनटा या वीटावेंड द्वारा विटामिन ए की 25–30 हजार इन्टरनेशनल यूनिट देने से हरे चारे की कमी को किसी हद तक दूर किया जा सकता है।

पशु के राशन में प्रोटीन खनिज आदि तत्वों की आवश्यक मात्रा को भी पूरा करना चाहिए। इससे दुधारू पशु के ब्याने के 2–3 माह के अन्दर फिर से नया हो जाने की संभावना बढ़ जाती है। नई होने वाली गाय–भैंसों को अधिक प्रोटीन वाला 2–3 किलो दाना देना चाहिए जिसमें बराबर–बराबर भाग खली, अनाज, चना एवं चोकर के अलावा कुल दानें का 1 प्रतिशत नमक एवं खनिज मिश्रण होना चाहिए।

अधिक गर्मी या सर्दी लगने से भी दूधारू पशु समयुानसार गर्भ धारण नहीं कर पाते। गर्मी के मौसम में पशुओं को दोपहर के समय छायादार वृक्षों की छाया में रखना चाहिए। सर्दियों में अधिक ठंडी हवा से तो बचाव करना ही चाहिए। साथ में उनके बाड़े में फर्श पर सूखी घास–फूस आदि का बिछावन देने से ठंडक से अच्छा बचाव रहता है। भैसें विशेषकर गर्मियों में रात्रि के समय जब मौसम ठंडा होता है, गर्मी *(Heat)* होने के चिह्न प्रकट करती है। इसी कारण किसान को इस

विषय में मालूम नहीं हो पाता है।

कई बार पशु के प्रजनन अंगों में कुछ खराबी आ जाने से भी विशेषकर कार्पसल्यूटियम स्थाई होने की वजह से पशु गर्मी में नही आ पाता। ऐसी परिस्थितियों में पशु चिकित्सक की मदद आवश्यक होती है।

3. उतम चारे एवं दानें का प्रबन्ध

एक दुधारू पशु को आमतौर पर लगभग 30 से 40 किलो ग्रम हरा चारा दिया जाता है जबकि भारतीय गाय लगभग कुछ कम 25–30 किलो ग्राम हरा चारा और 3–4 किलो ग्रम सूखा चारा खा लेती है। यदि पशु कम उम्र में बच्चा दे देता है और बढ़वार में है तो उसे 1–2 कि.ग्रा. अतिरिक्त दाना देना चाहिए। यदि अच्छी किस्म का हरा चारा उपलब्ध है तो 5 किलो तक दूध देने वाले पशु को 1–2 किलों काफी होता है। बरसीम अथवा रिजका जैसे हरे चारे के उपलब्ध होने पर 10 किलो दूध तक भी 1–2 किलो दाना काफी होता है। इन मात्राओं से अधिक दूध देने वाले पशु को, यदि भैस हो तो प्रति 2 किलो अतिरिक्त दूध देने पर 1 किलो दाना देना चाहिए। यदि गाय हो तो दाने की यही मात्रा प्रति ढाई–तीन किलों अतिरिक्त दूध देने पर दी जानी चाहिए। वैसे ये मात्रायें पशु के वजन, दुग्ध उत्पादन, बढ़वार, गर्भाधान की स्थिति आदि के आधार पर और वैज्ञानिक ढंग से आंकी जा सकती है। पशुओं की खुराक की उचित मात्रा के बारें में पूरी–पूरी जानकारी भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् के बुलेटिन नं. 25 में जो कि सैन तथा रे द्वारा लिखी गई है, उपलब्ध है। हाल में ब्याये हुए पशु को एक माह तक 1–2 किलो दाना, उसके गर्भाधान के दौरान पैदा हुई कमी को दूर करने के लिए अतिरिक्त मात्रा में देना आवश्यक है यदि बाजार से बना हुआ दाना खरीदना हो तो थैलों पर आई.एस.आई का चिह्न अथवा प्रमाण–पत्र अवश्य देखना चाहिए।

— □ —

पशुओं के मूल्यांकन हेतु स्कोर कार्ड विधि

संदीप कुमार सांगवान एवं सुरेंदर सिंह ढाका

पशु अनुवांशिकी एवं प्रजनन विभाग

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

पशुओं के क्रय–विक्रय के समय उनके गुणों व स्वास्थ्य के आधार पर उनकी उत्पादकता तथा कीमत का अंदाजा लगाया जाता है। आधुनिक पशु पालन में पशु के मूल्यांकन के लिए पशुओं की उत्पादकता संबंधी आकड़ें रखना जरूरी होता है, आंकड़ों के अभाव में पशु की नस्ल विशिष्ट शारीरिक बनावट एवं स्वास्थ्य के आधार पर उसका मूल्यांकन किया जाता है। पशुओं के मूल्यांकन एवं स्वास्थ्यता की परख हेतु कुछ विशेष विधियाँ प्रचलित है। पशुओं के स्वास्थ्य की जाँच व मूल्यांकन करने के लिए पशु चिकित्सक को ही वैधानिक अधिकार प्राप्त है। पशु चिकित्सा सहायक की भूमिका भी महत्त्वपूर्ण होती है, बल्कि इस लेख में दी जा रही जानकारी के आधार पर वे पशु–पालकों का मार्गदर्शन भी कर सकते हैं। दुधारू पशुओं के मूल्यांकन हेतु डेयरी केटल एसोसिएशन द्वारा विकसित विधि को स्कोर कार्ड विधि कहते हैं। इस विधि से दुधारू पशु की गुणवत्ता का आंकलन उत्पादन के पहले ही कर पाना संभव होता है।

स्कोर कार्ड विधि

स्कोर कार्ड विधि से दुधारू पशु के सभी गुणों का वर्णन होता है। अलग–अलग प्रतियोगिताओं के स्कोर कार्ड भिन्न–भिन्न हो सकते हैं। गुणों के आंकलन के आधार पर निर्णायक प्रत्येक गुण के अंक उसके सामने देते जाते हैं जिसके आधार पर पशु का आंकलन कर अन्तिम निष्कर्ष निकाला जा सकता है। स्कोर कार्ड का प्रारूप निम्नानुसार होता है :–

गुणों के अंक	गुणों का वर्णन	निर्धारित अंक
सामान्य रूपरेखा 20	नस्लीय गुण (कद, आकार, प्रकार एवं रंग आदि)	5
	शारीरिक बनावट, साफ सुथरी एवं अनावश्यक मोटापा रहित	4
	शारीरिक बनावट त्रिकोणीय	5
	नर्म एवं लचीली त्वचा तथा बाल मुलायम	4
	स्वस्थ चौकन्ना, सीधा एवं सरल स्वभाव	2
सिर और ग्रीवा 10	सिर साफ–सुथरा	1
	मस्तक आँखों के बीच	1
	चेहरा साफ–सुथरे आकार का एवं मध्यम लंबाई वाला	1
	मजल चौड़ा, गीला, मजबूत, होंठ, नथुने चौड़े व बड़े, जबड़े मजबूत	2
	आँखे नस्ल विशिष्ट	1
	आँखे चमकीली व बड़ी।	1
	सींग नस्ल, विशिष्ट व साफ–सुथरी	1
	ग्रीवा लंबी, सुगठित, सिर व ग्रीवा की संधि स्थल साफ–सुथरा	2
अगले पैर 6	कंधे व ग्रीवा के संधि स्थल	3
	टाँगें सीधी, सुगठित, अस्थियाँ, सुंदर व पैर साफ–सुथरे	3
शरीर 15	चौड़ी छाती, अगले पैरों के बीच फैली हुई	4
	पीठ सीधी व मजबूत	2
	कमर चौड़ी, बलिष्ठ समतल	3
	पसलियाँ लंबी, चौड़ी व लचीली	4
	कोख गहरी एवं भरी हुई	1
	नाभि नस्ल विशिष्ट	1
पिछले पैर 14	कूल्हास्थि चौड़ी व साफ	2
	कूल्हा लंबा–चौड़ा संतुलित	3
	पिन बोन, चौड़ी एवं स्पष्ट	2
	पूँछ सुव्यवस्थित लंबी क्रमशः पतली होती हुई अंत में गुच्छेदार बालों वाली	2
	जाँघ पतली व लंबी किंतु गोलाकार नहीं	3
	पिछले पैर सीधे, स्पष्ट, अलग–अलग अस्थियाँ व्यवस्थित	2

स्तनग्रथि का विकास 35	स्तन ऊपर, आगे व पीछे की और पूर्ण विकसित व सुस्पष्ट सभी थन समान व सुगठित	7
	क्षमता व आकार में बड़े	7
	गुण–नर्म, मुलायम, गाँठ व फाइब्रस ऊतकों से रहित	7
	स्तन की रक्त वाहिनियाँ उभरी व शाखायुक्त	3
	थन–समरूप, चौकोर व सुसंगत	5
	दुग्ध वाहिनियाँ बड़ी, शाखा युक्त व कुंडलित (घुमावदार)	4
	दुग्धागार बड़े आकार वाले	2
मूल्यांकन स्वयं द्वारा / विशेषज्ञ द्वारा श्रेणी		प्रथम / द्वितीय / तृतीय / चतुर्थ

पशु–मूल्यांकन में अवगुणों की परख

पशुओं में अवगुण तीन प्रकार के होते हैं। एक वह जिनसे पशु की उत्पादकता प्रभावित होती है और दूसरे अवगुणों से उत्पादकता कम नहीं होती किंतु उसका मूल्यांकन कम हो जाता है। मूल्यांकन के समय इन अवगुणों का ध्यान रखा जाना चाहिए तथा स्कोर कार्ड भरते समय अवगुणों की गंभीरतापूर्वक अंक दिये जाने चाहिए।

1. सामान्य अवगुण : अपूर्ण अंधापन, स्थायी लंगड़ापन, बंद या सिकुड़े हुए स्तन व थन, त्वचा पर स्थायी दाग, छोटे–बड़े जबड़े एवं घुटनों में सूजन आदि।
2. गंभीर अवगुण : तोता समान जबड़ा, जन्मजात विकृति, सँकरी छाती, चढ़े हुए पंखनुमा कंधे, पूँछ की असामान्य स्थिति, टेड़ा–मेढ़ा चेहरा, निकला हुआ घुटना व फैले हुए खुर, टकराता हुआ पिछला घुटना, कुंडलित पिछले पैर एवं लटकता स्तन
3. दुर्गुण– पूर्ण अंधापन, क्षीणता, कठोर स्तन व थन, अतिरिक्त थन या अविकसित जननांग, स्थायी लंगड़ापन एवं हर्निया।

पशु मूल्यांकन हेतु सामग्री व विधि

पशु प्रजाति व नस्ल के अनुसार उपयुक्त लंबाई व मोटाई की रस्सी, होलस्टर, मूल्याकंन स्थल, नकेल, लेबल, नए स्कोर कार्ड व लेखन सामग्री की आवश्यकता होती है। मूल्यांकन के पहले पशु का पहचान चिह्न व उसके मालिक का नाम लिख देना चाहिए। रस्सी व होलस्टर द्वारा पशु को अच्छी तरह नियंत्रित कर लिया जाना चाहिए। मूल्यांकन प्रारम्भ करने के पूर्व पशु को नए स्थल में ढलने का अवसर देना चाहिए। परिचारक को संकेत देकर पशु को मूल्यांकन स्थल में धीरे–धीरे 3–4 बार चारों ओर घूमाने के लिए कहना चाहिए। सर्वप्रथम पशु के सामान्य व गंभीर अवगुणों की ओर ध्यान देना चाहिए तथा उसके पश्चात् घूमते हुए पशु के गुणों को एक–एक करके परखना चाहिए। स्कोर कार्ड के आधार पर एक–एक अंग का निरीक्षण करके अंक देते जाना चाहिए। सभी अंकों को जोड़कर पशुओं की मूल्यांकन योग्यता सूची बना ली जानी चाहिए। योग्यता सूची में पशु के पहचान चिह्न, मालिक का नाम, कुल प्राप्तांक व योग्यता सूची में स्थान का उल्लेख अवश्य किया जाना चाहिए। अवगुणी पशु को प्रतियोगिता में पुरस्कृत नहीं किया जाना चाहिए।

मूल्यांकन के समय ध्यान दिये जाने योग्य बातें

मूल्यांकन के पूर्व स्कोर कार्ड का अच्छी तरह अध्ययन कर लेना चाहिए तथा प्रत्येक गुण–अवगुण के लिए निश्चित अंकों को याद रखा जाना चाहिए। नस्ल व लिंग के लिए निश्चित गुणों के अनुसार ही पशु को मूल्यांकन अंक दिये जाने चाहिए। अनावश्यक तर्क व शब्द जाल से बचना चाहिए। आत्म निर्भर मूल्यांकन करना चाहिए तथा मूल्यांकन के दौरान अन्य लोगों की बातों पर ध्यान नहीं देना चाहिए। कम महत्त्वपूर्ण गुणों को वरीयता नहीं दी जानी चाहिए अर्थात् पशु की उपयोगिता के आधार पर उसके गुणों की वरीयता निश्चित करके ही मूल्यांकन अंक दिये जाने चाहिए। निरीक्षण स्थल में पशु को घूमा–फिराकर 3–4 मी. की दूरी से उसके प्रत्येक अंगों को अच्छी तरह परखना चाहिए। आवश्यकता पड़ने पर मूल्यांकनकर्ता द्वारा एक ही नस्ल व उपयोगिता के दो पशुओं का समान मूल्यांकन हो जाने पर पशु के व्यवहार के आधार पर निर्णय लिया जाना चाहिए। तात्पर्य यह है कि पशु के समीप जाने, स्पर्श करने, थपथपाने, भीड़ देखकर भड़कने, दुधारू पशु के स्तन को हाथ लगाने पर उसकी प्रतिक्रिया व सीधेपन का आकलन अन्तिम निर्णय में सहायक हो सकता है। इसी प्रकार प्रजनन योग्य नर के मादाकांक्षी होने की प्रवृत्ति या अरूचि भी मूल्यांकन का आधार हो सकती है।

— □ —

गर्मी में दुधारू पशुओं का बचाव कैसे करें

राजेन्द्र सिंह

पशु विज्ञान केन्द्र, रोहतक

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

हरियाणा के किसान के लिए पशुधन आवश्यक ही नहीं अपितु परमावश्यक धन है। उनकी जीवनशैली, दिनचर्या, खानपान व सम्पति पशुधन के चारों तरफ घूमती है। सिकुड़ती ज़मीन, बढ़ते परिवारों के खर्च किसान के लिए यह और भी आवश्यक कर देते हैं कि वह अपने पशुधन से अधिकतम आय व लाभ प्राप्त कर सकें। इसके लिए पशु को अधिक गर्मी व अन्य दूषित वातावरण से पशुधन को बचाकर अच्छे व्यवहार के साथ रखना आवश्यक है ताकि पशु की ऊर्जा गर्मी से लड़ने में व्यर्थ न हो और यह ऊर्जा आदर के साथ उत्पादन बढ़ाने में लगे। गर्मी के मौसम में वातावरण का तापमान काफी बढ़ जाता है। कई बार तो तापमान 50 डिग्री सैन्टीग्रेट तक चला जाता है जो कि पशु के स्वास्थ्य के लिए बहुत ही हानिकारक है। हम जानते है कि गाय व भैंस के शरीर का सामान्य तापमान 101.5 डिग्री फार्नहाईट व 98.3 – 103 डिग्री फार्नहाईट सारे साल रहता है। पशुओं के अच्छे उत्पादन के लिए सामान्यतः 5 से 25 डिग्री सैन्टीग्रेट का तापमान बड़ा अनुकूल है। इस तापमान से अधिक और कम तापमान से बचाव के लिए प्रबन्ध करना बहुत आवश्यक है। हम जानते है कि गर्मी के मौसम में प्रतिकूल तापमान से प्रभावित होने के कारण पशुओं का दूध उत्पादन कम हो जाता है। अगर हम अपने पशुओं का ठीक ढंग से हरे चारे व संतुलित आहार का प्रबन्ध, पानी व अन्य देखभाल ठीक करेंगें तो गर्मी के मौसम में अपने दुधारू पशुओं से पूरा उत्पादन ले सकते हैं।

1. हरे चारे व सन्तुलित आहार का प्रबन्ध

हम जानते है कि गर्मी के मौसम में हरे चारों की कमी आ जाती है विशेषतौर से मई व जून के महीनों में, अगर हमें ठीक प्रकार से फसल चक्र बनाकर हरे चारों की व्यवस्था करेंगें तो गर्मी के मौसम में भी हम अपने पशुओं के लिए हरे चारे प्राप्त कर सकते हैं। इसके साथ–साथ अगर हम मार्च अप्रैल के महीनें में अधिक बरसीम को हम 'हे' बनाकर ऊपरलिखित कमी वाले समय में खिलाकर हरें चारों की पूर्ति कर सकते हैं।

2. संतुलित आहार

संतुलित आहार वह आहार होता है जिसके अन्दर प्रोटीन, ऊर्जा, खनिज तत्व व विटामिन इत्यादि उपलब्ध हों तथा 100 किलो संतुलित आहार इस प्रकार से बनाएँ – गेहूं, मक्का व बाजरा इत्यादि अनाज 32 किलोग्राम, सरसों की खल 10 किलोग्राम, बिनौले की खल 10 किलोग्राम, दालों की चूरी 10 किलोग्राम, चौकर 25 किलोग्राम, खनिज मिश्रण 2 किलोग्राम व साधारण नमक एक किलोग्राम लें। इसके साथ–साथ गर्मी के मौसम में पशुओं को प्रोटीन की मात्रा यानि की पशु आहार के अन्दर खलें जैसे सरसों की खल इत्यादि की मात्रा 30 से 35 प्रतिशत बढ़ा दें तथा इस प्रकार हम गर्मी के मौसम में हरे चारे व संतुलित आहार तथा विशेष प्रोटीनयुक्त चारा खिलाने से अपने पशुओं को गर्मी से बचाकर दूध उत्पादन बनाकर रख सकते हैं।

3. पानी

गर्मी के मौसम में पशु अपने शरीर की गर्मी को कम करने के लिए पानी की अधिक मात्रा ग्रहण करता है तथा शरीर के अतिरिक्त तत्व पसीने के द्वारा, पेशाब व गोबर के द्वारा व अन्य अंगों से बाहर निकालता है तथा अपने शरीर को तन्दरूस्त रखता है। क्योंकि पशु शरीर के अन्दर 65 प्रतिशत पानी होता है जो कि पशु की सारी क्रियाएं सुचारू रूप से चलाता है। गर्मी के मौसम में अक्सर पशु शरीर के अन्दर पानी की कमी आ जाती है। इसके लिए हमें विशेष ध्यान रखकर पशु के शरीर की पानी की पूर्ति करें। हम जानते है कि दूध के अन्दर पानी की मात्रा तकरीबन 87 प्रतिशत होती है। अगर पशु के शरीर के अन्दर पानी की कमी होगी तो दूध उत्पादन निश्चित रूप से कम हो जाएगा। वैसे पशु को पानी की जरूरत मुख्य रूप से तीन आधारों पर निर्भर करती है :–

क – दूध उत्पादन की जरूरत

पशु शरीर के हर 100 किलोग्राम वजन पर तकरीबन 5 लीटर पानी की जरूरत होती है। अतः पशुपालक भाईयों को सलाह दी जाती है कि पशु के शरीर का वजन का हिसाब लगाकर पानी की पूर्ति करें। तकरीबन हमारी दूधारू भैंसों का वजन 500 से 600 किलोग्राम प्रति भैंस होता है। इसके हिसाब से हिसाब लगाकर पानी की पूर्ति करें।

ख – दूध उत्पादन की जरूरत

दुधारू पशु को एक किलोग्राम दूध पैदा करने के लिए तकरीबन एक किलोग्राम पानी की जरूरत होती है। इसलिए आप अपने पशु का दूध उत्पादन का हिसाब लगाकर उससे भी अधिक पानी की पूर्ति करें।

इस प्रकार खिलाए चारों की किस्म (सूखा–हरा) का हिसाब लगाकर पानी की पूर्ति करें। क्योंकि अगर हमने बरसीम खिलाई है तो उससे पशु को तकरीबन 70 से 80 प्रतिशत पानी मिलता है, इसी प्रकार अगर हरी ज्वार खिलाई है तो तकरीबन 55 से 60 प्रतिशत पानी मिलता है। इसलिए ऊपरलिखित आधार को ध्यान में रखकर हम कह सकते हैं कि गर्मी के मौसम में अच्छा दूध उत्पादन लेने के लिए अच्छे दूधारू भैंस जिसका दूध उत्पादन करीबन 15 से 20 किलोग्राम प्रतिदिन हो उसे 70 से 80 लीटर स्वच्छ व ठंडा पानी गर्मी के मौसम में 24 घण्टे में पिलाने से हम अपने दूधारू पशुओं का दूध उत्पादन बनाकर रख सकते हैं।

अन्य देखभाल

गर्मी के मौसम में पशुओं को कम से कम चार–पाँच बार स्वच्छ व ठंडा पानी पिलाएं तथा बचा हुआ पानी पशु (भैंस) के शरीर व सिर पर डालें इससे पशु गर्मी के मौसम में भी नये दूध हो सकते हैं। पशुओं की चारे की खोर को रात को चारे से भरकर रखें क्योंकि गर्मी के मौसम में पशु रात को चरता है तथा तूड़ी व सूखा चारा खासतौर से रात को खिलाएं ताकि पशु के शरीर के अन्दर कम गर्मी पैदा हो।

रोजाना सुबह मादा पशुओं की जांच करें, कही आपका पशु गर्मी में तो नहीं आया, अगर आया तो उसे हमेशा टूटते आम्बे में (आखिरी आठ घण्टे) में कृत्रिम गर्भाधान करवाएं या उत्तम सांड से मिलवाएं। गर्मी के मौसम में पशुओं को छायादार पेड़ों के नीचे बांधे तथा सीधी गर्मी पशु को ना लगे तथा पशुघर के अन्दर पशु को गर्मी से बचाने के लिए रखते है तो घर के अन्दर हवा का आवागमन होना जरूरी है नहीं तो गैसों की उत्पत्ति हो जाएगी जिससे पशु का स्वास्थ्य प्रभावित होगा। अगर लू चल रही हो तो पशु घर की खिड़कियों पर गीली करके बोरी या टाट इत्यादि लगा दें और ध्यान रखें कि बोरी हो या टाट खिड़की को चिपके नहीं। यदि पशु को लू लग गई है तो अधिक मात्रा में ठण्डा पानी पिलाएं तथा साथ में मिलाकर नमक व चीनी का घोल दें। इसके बाद यदि दिक्कत है तो पशु चिकित्सक की सेवा लें। गर्मी के मौसम में भैसों को जोहड़ में लिटाना व शंकर नस्ल की गायों को नहलाना बहुत अच्छा व फायदेमंद होता है परन्तु ध्यान रखें स्वच्छ, साफ व ठण्डा पानी पशु को घर में पिलाकर जोहड़ में भेजें तथा 12 से 4 बजे के बीच भैसों को जोहड़ से बाहर न निकालें, क्योंकि इस समय के दौरान भैसों को बाहर निकालने से उनको सुनपात हो सकता है। पशुओं को बीमारियों से बचाव के लिए टीकाकरण का कार्यक्रम अपनाएं जिससे पशुओं को मुंह–खुर, गल–घोंटू इत्यादि बीमारियों से बचाया जा सके इसके साथ–साथ परजीवियों जैसे कि मच्छर, मक्खी व चीचड़ इत्यादि का उपचार करें।

इसलिए यह सच है कि उचित प्रबन्धन करके आप भी अपने पशुओं को हरे चारे, सन्तुलित आहार मौसम के हिसाब से खिलाएंगें, स्वच्छ–साफ व ठण्डा पानी, दूध व अन्य खान–पान पशु के शरीर के हिसाब से खिलाएं–पिलाएंगें, घर के अन्दर पूरा स्थान व आराम प्रदान करेंगें। बीमारियों से बचाव के लिए टीकाकरण का कार्यक्रम अपनाकर व परजीवियों का उपचार करके तथा अच्छे व्यवहार के साथ रखेंगें तो हम भी गर्मी के मौसम में अपने पशुओं का दूध उत्पादन व प्रजनन क्रिया सुचारू रूप से चला सकते हैं।

— □ —

दूध देने वाले पशुओं की कैसे करें देखभाल

राजेन्द्र सिंह

पशु विज्ञान केन्द्र, रोहतक,

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

हमारे प्रदेश में ग्रामीण क्षेत्र के माली हालात सुधारने में पशुधन की अहम भूमिका रही हैं। किंतु इस क्षेत्र का विकास बहुत कम और बढ़िया पशुओं का पलायन बहुत ज्यादा हुआ है। इसका उदाहरण यह है कि आज हमारे पास ज्यादातर पशुओं का दूध उत्पादन अन्य विकसित देशों के पशुओं के मुकाबले कम हैं। जैसे कि उदाहरण के तौर पर इज्रायल जैसे छोटे से देश जिसका जन्म करीबन हमारी आज़ादी के साथ ही हुआ था उसकी प्रति पशु दूध उत्पादन क्षमता करीबन 12000 लीटर प्रति वर्ष है। इसका श्रेय वहां के वैज्ञानिकों व पशुपालकों के कठिन परिश्रम को जाता है। वहीं हम ने अपने बढ़िया पशुओं को बेचकर पैसा तो जरूर कमाया परंतु अपने बढिया पशुधन यानि कि मुर्रा भैंसों को गंवाया। इस समस्या को ध्यान में रखकर प्रदेश के पशुपालन विभाग द्वारा सन 2002 के बाद आवश्यक कदम उठाएं गये जैसे कि मुर्रा भैंस संरक्षण के लिए प्रोत्साहन योजना जिसके अंतर्गत पशुपालकों को पशुओं के दूध व नस्ल के आधार पर काफी राशि प्राप्त हुई जोकि आज भी चल रही है। जिसके माध्यम से प्रदेश से मुर्रा भैंसों का पलायन काफी हद तक रूका हुआ है तथा प्रदेश में पशुपालकों को नस्ल व नस्ल सुधार कार्यक्रम की जानकारी प्राप्त करने में काफी फायदा हुआ। आज हरियाणा प्रांत में देश का कुल 2 प्रतिशत पशुधन है तथा लगभग 6 प्रतिशत दूध का उत्पादन हैं तथा प्रति व्यक्ति 708 ग्राम दूध की उपलब्धता है तथा राष्ट्रीय उपलब्धता से यह उपलब्धता तकरीबन 3 गुणा ज्यादा है तथा प्रदेश में ज्यादातर दूध की प्राप्ति भैंसों से है और इसे बढ़ाने की और भी गुंजाइश है तथा बढाया जा सकता है अगर हम अपने दूधारू पशुओं की देखभाल विशेष तौर से उनके रहन–सहन व अन्य बातों की देखभाल तथा संतुलित आहार व हरे चारों का प्रबंध तथा रोगों से बचाव की व्यवस्था सही प्रकार से निम्नलिखित तथ्यों के आधार पर करेंगें तो दूधारू पशुओं से हम अधिक दूध प्राप्त कर सकते हैं।

पशुघर व्यवस्था/रहन–सहन– दुधारू पशुओं को ज्यादातर गर्मी, सर्दी, तूफान, आँधी से बचाने के लिए पशु घर के अंदर रखा जाता है। उनके रहने के लिए पूरा स्थान (4 वर्गमीटर प्रति पशु भैंस तथा 3.5 वर्ग मीटर प्रति गाय) घर के अंदर देना चाहिए तथा इसका दुगुना स्थान खुला घूमने फिरने के लिए प्रदान करना चाहिए। आवास हवादार व रोशनी का आदान–प्रदान करने वाला हो। ताकि पशुघर के अंदर गैसों (कार्बनडाईआक्साइड, मिथेन व अमोनिया इत्यादि) की अधिकता न हो व पशु को ज्यादा से ज्यादा घर के अंदर शुद्ध वायु सांस लेने के लिए मिलें। सर्दी में बिछावन गीला न होने दें तथा खिड़कियों पर बोरी वगैरह लगा दें ताकि ठंडी हवा सर्दी में सीधी पशु को न लगे। गर्मियों में पशुओं को लू से बचाएं और छायादार पेड़ों के नीचे बांधकर साफ व स्वच्छ पानी पिलाएँ। सर्दी के मौसम में विशेष तौर से गुनगुना व ताजा पानी पशु को जितना हो सके अधिक से अधिक 3–4 बार करके अवश्य पिलाएं। इससे पशु के शरीर की सारी क्रियाएं सुचारू रूप से चलेंगी।

गर्मियों में भैंसों को दिन में तीन–चार बार अवश्य नहलाएं इससे ज्यादातर मादा पशु नये दूध होते हैं तथा भैंसों का दूध बढता हैं। सर्दी के मौसम में दोपहर के समय/तेज धूप के समय पशुओं को गुनगुने पानी से नहलाएं तथा नहलाने के बाद हल्का–हल्का सरसों का तेल शरीर के ऊपर लगाएं। पशुओं के पेट के अंदर के तथा बाहर के परजीवी जैसे जूण तथा चीचड़ आदि से बचाव के लिए देखभाल करनी चाहिए तथा पशु विशेषज्ञ से पूछ कर दवा–दारू करनी चाहिए। अगर ऐसा नहीं किया तो ये परजीवी पशुओं का खून चूसेंगें जिससे पशु में कमजोरी आएगी और बीमारियों फैलेंगी। मच्छर, मक्खी व ठंड से बचाने के लिए शाम को पशुओं को पशुघर के अंदर रखें तथा मच्छरदानी का प्रयोग करें। पशुघर का फर्श पक्का तथा खुरदरा रखने से पशु फिसल कर नहीं गिरता। सर्दी के मौसम में पशु का बिछावन कम से कम 6 इंच मोटा रखें इसके लिए धान की पुराल व खितवा इत्यादि का प्रयोग करें। पशु घर में पशु के खड़े होने के स्थान के पीछे हल्की नाली

बनाएं ताकि पशु द्वारा किया गया पेशाब बाहर निकल सकें व पशु द्वारा सर्दी के मौसम में किया गया गोबर व पेशाब के स्थान को तुरंत सूखा करते रहें।

अन्य देखभाल– पशु का दूध हमेशा पूर्ण हस्त विधि यानि के हाथ के बीच थन को लेकर प्यार से दबाकर दूध निकालना चाहिए लेकिन हमारे ज्यादातर भाई अंगूठा दबाकर दूध निकालते हैं जो कि गलत है क्योंकि इस से पशु के थन पर गांठ पड़ जाती है तथा थनैला रोग हो जाता है। दूध निकालने वाला आदमी रोगी नहीं होना चाहिए तथा दूध निकालते वक्त पशु के चारों तरफ शांत वातावरण होना चाहिए। बच्चे को दूध उसके शरीर के वजन के हिसाब तथा आयु के अनुसार पिलाना चाहिए। मोटे तौर पर बच्चे के शरीर के वजन का 1/10वां हिस्सा खीस आधे घंटे से एक घंटे के अंदर–अंदर पिला देना चाहिए।

पशु आहार व हरा चारा– हमारे देश व प्रदेश में प्रति पशु हरे चारों की बहुत कमी है। इसके लिए पशु पालकों को हो सके तो सरकार द्वारा उपलब्ध उत्तम किस्म के बीजों की बिजाई करनी चाहिए तथा जमीन का हिसाब लगाकर कुछ प्रतिशत हिस्से में चारे की बिजाई जरूर करनी चाहिए तथा एक फसल चक्र बनाना चाहिए ताकि पशुओं को सारा साल हरा चारा मिलता रहे। क्योंकि हरा चारा विटामिनों से भरपूर होता हैं व किफायती पड़ता है व दूध के उत्पादन को बढ़ाने में अह्म भूमिका निभाता है। अधिक मात्रा में उपलब्ध हरे चारों से साइलेज (जैसे ज्वार, बाजरा मक्का) व 'हे' बनाएं (जैसे बरसी इत्यादि) ताकि हरे चारों की कमी वाले महीनों के समय में (मई, जून व अक्टूबर, नवम्बर) पशुओं को खिलाया जा सके लेकिन इसके साथ ही सूखा चारा व भूसा जरूर दें वरना अकेले हरे चारे से पशु को अफारा हो जायेगा। अगर अफारे की समस्या आ जाती है तो तुरंत पशु को 60 ग्राम तारपीन का तेल व 500 ग्राम से 750 ग्राम सरसों का तेल मिलाकर रोगी पशु को पिलाएं तथा उसके बाद पशु चिकित्सक की सलाह लें। भैसों व गायों को संतुलित आहार दें जिसमें ऊर्जा, प्रोटीन, खनिज लवण व विटामिन उचित अनुपात व मात्रा में हो। प्रतिदिन तकरीबन 100 ग्राम खनिज मिश्रण चारे में मिलायें व प्रोटीन के लिए खल व बिनौला दें तथा ऊर्जा के लिए अनाज दें। चारे में फास्फोरस की कमी के कारण अनेक रोग जैसे के लहू मूतना अथवा लाल मूतना रोग हो जाते है। अतः फास्फोरस की कमी को पूरा करने के लिए गेहूं के आटे का छानस पशु के खानपान में मिलाएं। एक दूध देने वाला पशु जो 10–12 लीटर दूध दे तो उसे

चावल कन्की / मक्का / जौ / जई	*40 किलोग्राम*
गेंहू का चौकर	*25 किलोग्राम*
खली सरसों व अन्य	*32 किलोग्राम*
खनिज मिश्रण	*2 किलोग्राम*
साधारण नमक	*1 किलोग्राम*

25–30 किलो हरा चारा तथा 6–7 किलो दाना मिश्रण प्रतिदिन दें। 100 किलोग्राम दाना मिश्रण ऐसे बनायें –

इसके साथ–साथ ध्यान रखें सर्दी के मौसम में 35 प्रतिशत अतिरिक्त अनाज का हिस्सा व गर्मी के मौसम में खली व बिनौले का हिस्सा अतिरिक्त मिलाकर पशुओं को खिलाएं।

पशु के अंदर खनिज तत्वों की कमी के कारण पशु जकड़न व नये दूध नहीं होता तथा मूत्र पीते हैं, दीवार चाटते हैं, कपड़ा व मिट्टी खाते हैं। इसलिए पशुओं को खनिज मिश्रण सारा साल रोजाना देते रहें इससे पशु को बहुत ही फायदा होगा।

रोगों से बचाव के लिए इलाज से बेहतर है की पद्धति का अनुसरण करें इसलिए पशुओं को मुंह–खुर, गलघोंटू व माता आदि से बचाव के लिए टीकाकरण अवश्य करवायें। दस्त लगने व थनैला होने पर हमारे लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय की पशु रोग जांच प्रयोगशाला व पशुपालन विभाग की पशु रोग जांच प्रयोगशाला में गोबर व दूध की जांच करवा कर पशु चिकित्सक से इलाज करायें। अगर हम ऊपर लिखी इन बातों पर ध्यान देंगें तो हम अपने पशुओं से अच्छा दूध उत्पादन ले सकते हैं।

— □ —

स्वच्छ दुग्ध उत्पादन का महत्त्व एवं कुछ उपयोगी बातें

महावीर चौधरी* एवं जयन्त गोयल**

*पशु अनुवांशिकी एवं प्रजनन विभाग,
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार
**भारतीय पशु-चिकित्सा अनुसंधान संस्थान, बरेली

मनुष्य के लिए दूध एक आदर्श एवम् संपूर्ण खाद्य पदार्थ हैं। इसमें प्रोटीन, वसा, शक्कर तथा कई प्रकार के लवण पाये जाते हैं। भारत में लगभग दो-तिहाई दुग्ध उत्पादन छोटे एवम् गरीब किसानों द्वारा होता हैं। यद्यपि भारत दुग्ध उत्पादन में दुनिया के सभी देशों में सर्वोपरि हैं, फिर भी यहां पर मौजूदा दुग्ध उत्पादन छोटी-छोटी इकाईयों में असंघठित हैं। इसके साथ-साथ भारत में उष्णकटिबंधीय जलवायु का होना, किसानों में गुणवत्ता चेतना की कमी एवम् बड़ें पैमानें पर दूध में मिलावट जैसी अनेक परिस्थितियां दुग्ध उत्पादन की गुणवत्ता को प्रभावित करती हैं। साधारण अवस्था में दुग्ध के तरल पदार्थ होने की वजह से, दूध में जीवाणुओं से संक्रमण की संभावनाएं बनी रहती हैं। इसलिए दूध एक अति संवेदनशील खाद्य पदार्थ है, जिसकी स्वतः आयु बहुत कम है तथा जीवाणु बड़ी जल्दी इसको संक्रमित कर सेवन के लिए अयोग्य कर देते हैं। जिससे न केवल दूध की गुणवत्ता खराब होती है बल्कि दुग्ध उत्पादन पर भी असर पड़ता है। इसलिए प्रस्तुत लेख में स्वच्छ दुग्ध उत्पादन के बारे में कुछ महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी बातों का उल्लेख किया गया है।

स्वच्छ दुग्ध का मतलब

स्वच्छ दूध स्वच्छ दुधारू पशु के थन से निकला वो प्राकृतिक द्रव्य पदार्थ है जिसमें कोई बाह्य गन्दगी नहीं होती और स्वास्थ्य की दृष्टि से अच्छी सुगंध एवम् पौष्टिकता वाला होता हैं। इसके रख-रखाव के गुण भी अधिक होते हैं एवम् इसमें निर्धारित प्रतिशत मात्रा में वसा व ठोस पदार्थ विद्यमान होते हैं।

स्वच्छ दुग्ध उत्पादन के उद्देश्य

1. दूध को दृष्टिगोचर गन्दगी रहित प्राप्त करना।
2. हानिकारक जीवाणु रहित दुग्ध उत्पादन करना।
3. अच्छी सुगंध, रख-रखाव एवम् स्वाद वाला दूध प्राप्त करना।
4. अच्छे दूध पदार्थ बनाने के लिए।
5. अस्वच्छ दूध से फैलने वाली बीमारियों की रोकथाम के लिए।

दुग्ध संक्रमण होने के मुख्य कारण एवम् उनका निदान

दूध को संक्रमित करने के मुख्यतः दो कारण हैं

1. **आन्तरिक कारण-** रोग ग्रसित पशु जैसे थनैला रोग, टी.बी., चेचक, तरंगित बुखार, मिल्क सिकनेस इत्यादि।

बचाव

यदि पशु थनैला रोग से ग्रसित हैं तो उसका दूध मनुष्य के प्रयोग में न लायें तथा उसे फेंक दें। थनैला संभावित एवम् ग्रसित पशु को हमेशा अंत में दुहें। प्रथम दूध की कुछ धार स्ट्रिप कप में डालकर या फिर होटस एवम् कैलिफोर्नियन परीक्षण द्वारा जांच लें। यदि दुधारू पशु किसी बीमारी से ग्रसित हैं तो, उसे पशु चिकित्सक के पास ले जाकर उसका पूर्ण इलाज करवाएं। दुधारू पशुओं का समय रहते टीकाकरण अवश्य करवाएं।

2. **बाह्य कारण : ये विभिन्न प्रकार के हैं**

(क) दूध का दुधारू पशु द्वारा संक्रमण होना जैसे मलमूत्र द्वारा, त्वचा एवम् अयन पर गन्दगी से।

बचाव

पशु को दोहन से एक घंटा पहले ब्रुश करें, इससे ढ़ीले बाल एवम् त्वचा के सूखे चीथड़ेदूध दोहने से पहले झड़ जाते हैं। दोहने के समय पूंछ को पिछले पैरों से बांध लें। थनों को दोहने से पहले धो लें, उसके बाद उस पर कीटनाशक घोल (2 प्रतिशत बेन्जितोल) या लाल दवा लगाकर सूखे कपड़े से पोछ लें। दूध दोहने के समय ये अवश्य सुनिश्चित कर लें कि थन अच्छी तरह से सूखे हुए हों।

(ख) मनुष्य द्वारा संक्रमण– मनुष्य की कुछ बीमारियां जैसे (टाइफाइड, दस्त, कोलेरा, डिप्थेरिया) भी दूध को संक्रमित करती हैं।

बचाव

स्वस्थ व्यक्ति ही दुधारू पशुओं का दूध निकालें, साथ–साथ ये भी सुनिशचित करें कि उसके नाखून बराबर कटे हो, हाथ साफ हों एवम् उसमें बुरी आदतें न हों (जैसे–सिगरेट पीना, पान गुटका आदि चबाना। दोहनें से पहले हाथों को 20 पी.पी.एम. क्लोरीन घोल से अवश्य धोएं।

(ग) दूध का किसी भी माध्यम से संक्रमण–जैसे बर्तन, दुग्धशाला, दोहने का ढंग, चारा इत्यादि।

बचाव

बर्तन साफ, जीवाणु रहित, स्टील के एवम् कम जोड़ों के हों, प्रयोग करने से पहले क्लोरीन से धुले हुएं और सुखें हों। दुग्धशाला की दीवारों पर सफेदी पुती हुई हो, फर्श साफ हो, साथ–साथ पशुशाला में हवाके आगमन एवम् रोशनी का उचित प्रबंध हो। दुधारू पशु को हमेशा पूर्ण हस्त द्वारा ही दोहें, इससे न केवल पूर्ण दोहन होता हैं बल्कि पशु को दोहते समय तकलीफ भी नहीं होती। हे, भूसा एवम् गंध वाले चारे (साईलेज) को हमेशा दोहन के बाद खिलाएं। पीने का पानी हमेशा स्वच्छ एवम् कीटाणु रहित दें।

दूध निकालने के बाद दूध को साफ छलनी से छान लें एवम् उसे ढककर मक्खियों से दूर रखें। इसके साथ दूध को 5 डिग्री के तापमान पर रखें जिससे उसमें जीवाणुओं की संख्या न बढ़ पाएं। स्वच्छ वातावरण में पल रहे स्वस्थ दुधारू पशु से स्वच्छतापूर्वक निकाला गया दूध ही गुणवत्ता की दृष्टि से उत्तम होता है। इसलिए किसान भाई उपरोक्त बातों को ध्यान में रखकर स्वच्छ दुग्ध उत्पादन करके दूध के द्वारा फैलने वाली बीमारियों को मनुष्यों में फैलने से रोक सकते हैं और प्रदेश की दुग्ध उत्पादन क्षमता में भागीदारी निभा सकते हैं।

— □ —

पशु का भोजन तथा उसकी वर्गीकरण

विक्रम जाखड़ एवं अभय सिंह यादव

पशु अनुवांशिकी एवं प्रजनन विभाग
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

भोजन प्रमुख रूप से पशु में विभिन्न कार्यों के लिए प्रयोग होता है। यह शरीर के तापमान को बनाये रखने के लिए आवश्यक ऊष्मा प्रदान करता है। यह कार्य करने की शक्ति के लिए प्राणूलक ऊर्जा प्रदान करता है। यह शरीर की वृद्धि करता है। यह ऊतकों की टूट–फूट की मरम्मत के लिए मूल तत्व प्रदान करता है। पशुधन की विभिन्न जातियों के लिए भोजन सामग्री के संघटन में काफी विविधता होती है तथापि वे सभी एक ही प्रकार के पोषक तत्वों के बने होते हैं। पशु भोजन में भी वे सभी पोषक तत्व होते हैं जिससे पशु का शरीर बनता है। रासायनिक विश्लेषण के अनुसार भोजन को निम्नलिखित वर्गों में बांटा जा सकता है।

पशु भोजन

पशु की भोजन सामग्री तथा मनुष्य की भोजन सामग्री के रासायनिक संघटन में बिल्कुल भिन्नता होती है। इसका कारण पशु भोजन सामग्री की प्रकृति और उसकी उपलब्धता का होना है। पशु घास भूसा आदि पदार्थ भी हो जो कि दुष्पचनीय तन्तुओं से भरे होते है, खासकर पचा लेने की क्षमता रखते है। इस प्रकार के पदार्थ मनुष्य का शरीर ग्रहण नहीं कर पाता। स्त्रोत के अनुसार पशु के भोजन सामग्री का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया जा सकता है। इस वर्गीकरण के अनुसार पशु भोजन की समस्त सामग्री दो स्त्रोतों से उपलब्ध होती है। एक तो वनस्पति स्त्रोत से और दूसरी जैविक स्त्रोत से हे। पहले हम वनस्पति स्त्रोत की सामग्री में से मोटे चारे को लेते हैं।

मोटे चारे– इस वर्ग के अन्तर्गत सभी प्रकार के चारे जैसे हरी मक्का, जई, बाजरा, हाथी घास, बरसीम, लोबिया, लुसर्न, साइलेज, सूखा चारा जैसे सूखी घास भूसा आदि आते है। आमतौर पर इन चारों की विशेषता यह है कि इनमें दुष्पचनीय तन्तुओं (फाईबर) की मात्रा अधिक होती है। सूखी घास में यह 25–30 प्रतिशत तक होती है।

यूं तो सभी प्रकार की भोजन सामग्री में दुष्पचनीय तन्तु थोड़ी बहुत मात्रा में विद्यमान रहती है किन्तु मोटा चारा केवल उसी को कहा जाता है जिससे दुष्पचनीय तन्तुओं की मात्रा एक सीमा से अधिक होती है। पशु भोजन सामग्री अधिनियम के अनुसार कोई भी भोज्य पदार्थ जिसमें दुष्पचनीय तन्तुओं (फाईबर) की मात्रा 18 प्रतिशत से अधिक होगी, वह मोटा चारा कहा जाएगा। इस परिभाषा के अनुसार चने का छिलका, मक्की के दाने का छिलका एवं जई का छिलका भी मोटे चारे के अन्तर्गत आता है। परन्तु भारत में यह सभी सामग्री सान्द्र वर्ग के अन्तर्गत गिनी जाती है।

पशु के पाचन तन्त्र में फाईबर के मुख्य कार्य

(क) सघन सान्द्र पोषकों के साथ मिलकर यह उनकी सघनता को कम करता है और पाचक रसों को उसके सम्पर्क में लाने में सहायक होता है।

(ख) यह पेट और आंतों को फैला देता है जिससे कि पशु को पूर्णता की सुखद अनुभूति होती है।

(ग) यह पशु के प्रथम आमाशय में आन्त्र गति को उत्तेजित करता है जिसके फलस्वरूप भोजन पचने में सहायता मिलती है और पचे हुए भोजन को आगे के भागों में जाने की सहूलियत होती है।

पशु के राशन में तन्तुओं (फाईबर) की कमी से भंयकर परिणाम हो सकते है। पशुओं को मात्र सान्द्र भोजन पर रखना कठिन ही नहीं असंभव भी है। उन पशुओं को जिन्हें पर्याप्त मात्रा में

सान्द्र पोषण मिलता है, किन्तु तन्तु युक्त भोजन नहीं मिलता, सन्तोष प्राप्त नहीं कर पाते जिसके कारण उनमें बैचेनी और भोजन की लालसा बढ़ जाती है। ऐसी अवस्थाओं में पशु लकड़ियाँ या मिट्टी खाने लगते है जिससे उन्हें ''पाइका'' नामक रोग हो जाता है। इस प्रकार पशु के भोजन में तन्तु युक्त मोटे चारे का होना नितान्त आवश्यक है। मोटे चारे के कारण ही पशु की भोजन की मात्रा बढ़ती है। यह तन्तु ही है जो पशु के भोजन के आयतन को बढ़ाते है।

पशु के राशन के आयतन की अधिकता का प्रभाव उसकी विरेचन (मल त्याग) क्रिया पर भी पड़ता है। यह माना गया है कि पशु भोजन जिसमें मोटे चारे की अधिकता होती है, वह दस्तावर होता है। तन्तु आमतौर पर जलरागी होते है और जल्दी ही पानी को अपने में आत्मसात (सोंखकर) करके फूल जाते हैं। जिससे विरेचन (मल त्याग) क्रिया में सहायता मिलती है।

तृण–भक्षी पशुओं के लिए अधिक आयतन का भोजन उनके विरेचन (मल त्याग) क्रिया में ही सहायता नहीं करता वरन् उनकी अधिक शक्ति का भी द्योतक होता है। जो पशु जितना अधिक चारा खायेगा, वह उतना ही अधिक शक्तिशाली होगा।

मोटे चारों में फली देने वाले चारे की जातियाँ अधिक पौष्टिक एवं पोषक तत्व देने वाली होती है। इनमें प्रोटीन की मात्रा सूखे तत्व के आधार पर 18 से 22 प्रतिशत पाई जाती है। जब किसी रियल जाति के चारों में प्रोटीन की मात्रा 4–8 प्रतिशत पाई जाती है। फली वाले चारों में खनिज विशेषकर कैलशियम की मात्रा भी अन्य चारों के मुकाबले में चार गुनी अधिक पाई जाती है। फास्फोरस की मात्रा फलीदार चारों में कम होती है।

फलीदार चारे की फसलों से सूखा चारा (हे) भी अच्छा बनता है। इस तरह का बनाया चारा विशेष कर बढ़ने वाले गौ पशुओं के लिए पौष्टिक आहार बनता है। सुखाये गए चारे का पोषण मूल्य विशेष रूप से घास के प्रकार तथा परिपक्वता की अवस्था पर निर्भर करता है। यदि 'हे'' बनाने के लिए चारा जल्दी काटा जाएगा तो सूखा चारा अधिक प्रोटीन युक्त होगा। इसमें दुष्पचनीय तन्तुओं की मात्रा कम होगी और अच्छी पचने वाली होगी। फसल में फूल खिलने की अवस्था में काटी गई चारे की फसल अच्छी रहती है।

साइलेज बनाने के लिए ज्वार, मक्की और बाजरा तथा जई के चारे के फसलों से रसदार साइलेज बनता है। जब हरे चारे की कमी होती है तो उस समय यह हरे चारे के स्थान पर खिलाये जा सकते हैं। बरसीम 4 भाग तथा एक भाग धान का पुआल मिलाकर भी अच्छा साइलेज बनता है। बरसीम में जल की मात्रा अधिक होती है। इसको धान का पुआल सोख लेता है और पुआल में पचनीय तत्व भी बढ़ जाते हैं। साइलेज अधिक स्वादिष्ट होता है।

सूखे चारे में आमतौर पर लिगनिन युक्त तन्तु का बाहुल्य होता है। इसी कारण इनकी पचनीयता कम होती है। इनमें घुलनशील कार्बोहाइड्रेट की मात्रा भी परिवर्ती होती है और प्रोटीन तथा वसा की मात्रा काफी कम होती है। सिलिका की अधिक मात्रा होने से भी सूखे चारों की पचनीयता कम होती है। साथ ही खनिज पदार्थ जैसे कैलशियम तथा फास्फोरस की मात्रा भी कम होती है।

समग्र पदार्थ

इनके अन्तर्गत सभी दानें तथा बीजों के समूह आते हैं। आमतौर पर सीरियल जाति के दानें जैसे जौ, जई, मक्का में कार्बोहाइड्रेट की मात्रा तथा ऊर्जा की बहुतायत होती हैं। परन्तु प्रोटीन की मात्रा की कमी पाई जाती है। चने में प्रोटीन की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक होती है और इसमें प्रोटीन तथा ऊर्जा देने वाले तत्वों का अनुपात जिसे ''पोषण अनुपात'' कहते हैं, काफी अच्छा होता है। इसलिए यह दुधारू पशुओं एवं घोड़ी के लिए अच्छा भोजन माना जाता है। सान्द्र भोज्य सामग्री में तकनीकी रूप से वह सभी भोज्य पदार्थ आते है जो कि मुख्य पोषक तत्व जैसे प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट तथा वसा प्रचुर मात्रा में प्रदान करते हैं और जिसमें फाइबर की मात्रा 18 प्रतिशत से अधिक नहीं होती। पशु भोज्य पदार्थों के उद्योग धन्धों के क्षेत्र में सान्द्र की संज्ञा सर्वत्र रूप से उन सभी पदार्थों को दी जाती है जो व्यवसाय रूप से भोज्यपूरक के रूप में उपलब्ध है।

इस अर्थ में सान्द्र शब्द का अभिप्रायः ऐसे मिश्रित पदार्थ से है जिसमें आधार भूत पदार्थ की अपेक्षा अधिक प्रोटीन या विटामिन या ऊर्जा प्राप्त होती है। सान्द्र आमतौर पर मिश्रण ही होते हैं और ये मिश्रण इस प्रकार के बनाये जाते हैं कि पशु को सन्तुलित रूप से सभी पोषक तत्व आवश्यकतानुसार प्राप्त हो जाएं। इसके लिए आधारभूत भोज्य पदार्थों के साथ इनको अलग से मिलने की आवश्यकता पड़ती है। सान्द्र के अन्तर्गत तिलहनों की खली का विशेष स्थान है क्योंकि इनमें प्रोटीन की मात्रा अधिक होती है। बिनौले, अलसी, मूँगफली, नारियल तथा तिल आदि की खली मुख्य रूप से प्रयोग में लाई जाती है। अपने शमनकारी गुणों के कारण मूँगफली और अलसी की खली बच्चों को खिलाने में लाभकारी होती है। विशेष रूप से जब उनके पाचक अंगों में सूजन या प्रवाह उत्पन्न हो जाती है।

अलसी की खली का एक और विशेष गुण है कि इसको खिलाने से पशु की त्वचा मुलायम होती है और उसके बालों तथा त्वचा में चमक आ जाती है। किसानों में पशुओं को अलसी की खली खिलाने का काफी चलन है। इसका स्वाद भी सभी खलियों की अपेक्षा अच्छा होता है। इसमें उच्च कोटि की प्रोटीन होती है।

मूँगफली की खली में प्रोटीन की मात्रा 45 से 50 प्रतिशत तक होती है और इसका स्वाद भी मीठा होता है। एक बात जो विशेष ध्यान देने की है, वह यह है कि बरसात के मौसम में सीलन के कारण मूंगफली की खली में फफूंदी लग जाती है जिसके फलस्वरूप इसमें जीव विष पैदा हो जाते है जिससे यह पशु के लिए घातक हो सकती है।

खराब सरसों या तारामीरा की खली में अधिक मात्रा में ग्लूकोसाइड नामक पदार्थ आमतौर पर पाये जाते हैं जो पशु के प्रथम आमाशय में विघटित होकर हाइड्रोसायनिक अम्ल में परिवर्तित हो जाता है। घटिया किस्म की खली को अधिक मात्रा में खिलाने से पशु को आन्त्र शोध (बदहज़मी) तथा गुर्दे में जलन पैदा हो जाती है। इसके फलस्वरूप पशु का शारीरिक नुकसान हो सकता है।

बिनौले की खली दो प्रकार की उपलब्ध होती है। एक तो छिलका रहित यानि केवल मिगी की खली और दूसरी छिलका सहित यानि पूरे बिनौले की खली। छिलका रहित खली का पोषण मूल्य छिलका खली की अपेक्षा अधिक होता है।

कृषि व्यवसाय में उत्पादों में चोकर, चुन्नी, साल चूरा तथा टोपिओका व्यवसाय के उपोत्पाद एवं फल तथा सब्जी व्यवसाय के उपोत्पाद आते है। यह सस्ते भी होते है और आमतौर पर सान्द्र मिश्रण के काम आते है।

वधशालाओं के उपोत्पाद एवं मछली का चूरा भी पशु आहार के रूप में इस्तेमाल किये जाते है। इनमें प्रोटीन की मात्रा 80 प्रतिशत तक पाई जाती है और इनकी प्रोटीन भी उच्च कोटि की होती है। इसी कारण मछली का चूरा विशेष रूप से पशुओं के नवजातों के लिए जब उनका दूध छुड़वाया जाता है, तब दूध के स्थान पर जो मिश्रण उन्हें दिया जाता है, इसके बनाने के काम में आता है। इस मिश्रण को मिल्क रिप्लेसर कहते हैं। इसी प्रकार एक दूसरा मिश्रण भी होता है जिसे काफ स्टाद्रर भी कहते हे। यह थोड़े बड़े पशुओं शावकों को स्तन त्याग के अवसर पर दिया जाता है। इसमें भी मछली का चूरा इस्तेमाल में आता है। कहने का तात्पर्य यह है कि मछली के चूरे में लगभग वे सभी पोषक तत्व होते हैं जो दूध में होते हैं।

पशु पोषण विज्ञान में पशु के भोजन संबंधी कुछ पारिभाषिक शब्द है। अब हम उनका थोड़ा जिक्र करेगें। सबसे पहले भोजन सामग्री शब्द को ले। पशु–पोषण विज्ञान से भोजन सामग्री उन सभी उत्पादों को कहते है जो पशु की खुराक में उचित ढंग से इस्तेमाल करने पर पोषण मूल्य प्रदान करें। इन उत्पादों का स्त्रोत चाहे प्राकृतिक हो, चाहे वे कृत्रिम रूप से बनाये गए हो।

राशन और खुराक

राशन किसी व्यक्ति या पशु को एक दिन यानि 24 घण्टे के लिए निर्धारित मात्रा से है चाहे उसमें पशु की पोषण आवश्यकताओं की पूर्ति हो चाहे न हो। और खुराक किसी व्यक्ति या पशु द्वारा एक बार में खाये जाने वाले भोजन को कहते हैं।

सन्तुलित राशन

सन्तुलित राशन उस भोजन सामग्री को कहते है जो किसी भी पशु की 24 घंटें की निर्धारित पौषणिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। यहां पर संतुलित शब्द राशन में कार्बन, वसा और प्रोटीन के आपसी विशेष अनुपात के लिए कहा गया है। इसे हम इस प्रकार भी कह सकते है कि वह भोजन का मिश्रण जो किसी विशेष पशु को उसकी 24 घंटे की पोषण की आवश्यकताओं की पर्याप्त पूर्ति के लिए विशेष सिफारिश के आधार पर दिया जावे, वह उस पशु का संतुलित राशन कहलायेगा। संतुलित राशन में मिश्रण के विभिन्न पदार्थों की मात्रा ऋतु और पशुभार तथा उसकी उत्पादन क्षमता के अनुसार घटती बढ़ती रहती है।

आधारभूत भोज्य

आधारभूत भोज्य नाम सबसे पहले उन सभी दानों और उनके उपोत्पादों के समूह के लिये दिया गया था जिनमें प्रोटीन की मात्रा 16 प्रतिशत से अधिक नहीं होती और जिनमें तन्तु की मात्रा 18प्रतिशत होती है। इस प्रकार के भोज्य पदार्थ किसी भी पशु के राशन का आधारभूत भोज्य बनते है।

पौषणिक रूप में यह आधारभूत भोज्य मूल रूप में ऊर्जा के सान्द्र स्त्रोत होते है और विशेषतया इनमें मांड तथा शर्करा का बाहुल्य होता हे। इनको शर्करावर्गीय सान्द्र कह कर भी पुकारा जाता है। पशु पालकों की भाषा में ये कम प्रोटीन वाले सान्द्र है। इस प्रकार सान्द्र के उदाहरण में मक्की, जई, गेहूं और उनके उपोत्पाद लिये जा सकते है।

वसा की मात्रा 5 प्रतिशत से कम होती है। आधारभूत भोज्यों में मुख्य पूर्ण अन्तर जो कि उनके व्यवहारिक उपयोग में महत्त्वपूर्ण है, उनकी पचनीय ऊर्जा की मात्रा पर आधारित होता है। यह साधारण रूप से फाईबर की मात्रा के उलटे अनुपात में होता है। अर्थात यदि किसी भोज्य पदार्थ में फाईबर की मात्रा अधिक होगी तो उस भोज्य की पचनीय ऊर्जा कम होगी।

पूरक भोज्य

इस तरह के भोज्य, प्रोटीन या खनिज पदार्थों या किन्हीं विटामिनों के साथ स्त्रोत होते है। ऐसी परम्परा है कि एक मिश्रित प्रोटीन पूरक भोज्य का वह मिश्रण है जिसमें प्रोटीन की मात्रा 30 प्रतिशत या इससे अधिक होती है। कोई भी खनिज या विटामिन वाहक को जब अलग से राशन में मिलाया जाता है तो वह भी आमतौर पर पूरक के नाम से ही पुकारा जाता है।

— □ —

पशु आहार के तत्व

शालिनी शर्मा

पशुचिकित्सा जीव कार्यिकी एवम् जीव रसायन विभाग
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

पशुओं के आहार में कार्बोहाईड्रेट, वसा, प्रोटीन, विटामिन तथा खनिज लवणों का अति विशेष महत्त्व है। अतः पशुओं के आहार में सभी तत्वों की उचित मात्रा का होना उनके स्वास्थ्य व उत्पादन शक्ति में विशेष योगदान होता है।

विटामिन अत्यन्त जटिल कार्बनिक पदार्थ होते हैं जो विभिन्न प्रकार के भोज्य पदार्थों में प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। विटामिन्स सामान्य चयापचय क्रियाओं में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं एवं इनकी कमी से पशुओं में विभिन्न प्रकार के रोग हो जाते हैं।

शरीर की सामान्य क्रियाओं के लिए पशुओं को विभिन्न प्रकार के विटामिनों की सही मात्राओं की आवश्यकता होती हैं। ये विटामिन सामान्य रूप से हरे चारे से पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो जाते हैं। विटामिन के कई प्रकार होते है जैसे विटामिन ए, ई, सी, डी, के व विटामिन बी समूह। विटामिन बी तो पशु के पेट में उपस्थित सूक्ष्म जीवाणुओं द्वारा पर्याप्त मात्रा में संश्लेषित होता है। अन्य विटामिन (ए, सी, डी, ई तथा के) पशुओं को चारे और दानें द्वारा मिल जाते हैं।

विटामिन ए– विटमिन ए की कमी से गायों व भैंसों में गर्भपात अंधापन, भूख की कमी, चमड़ी का सूखापन, गर्मी में न आना तथा गर्भ का ना रूकना आदि समस्याएँ हो जाती हैं।

विटामिन डी– विटामिन डी की विशेषता यह है कि यह विटामिन भोज्य पदार्थों में नहीं पाया जाता है। अधिकतर पशु शरीर की त्वचा में उपस्थित रसायनों से सूर्य की उपस्थिति में विटामिन डी का स्वतः निर्माण कर लेते हैं। विटामिन डी शरीर में कैल्शियम की मात्रा को बनाए रखने में महत्त्वपूर्ण योगदान प्रदान करता हैं। कैल्शियम हड्डियों की मजबूती के लिए अत्यावश्यक होता हैं। इसके अभाव में हड्डी कमजोर हो जाती व टूटने की अत्यधिक सम्भावना रहती है।

विटामिन ई– यह शरीर को ऑक्सीजन के हानिकारक रूप से बचाता हैं। इस गुण को एंटीऑक्सिडेन्ट कहा जाता हैं। विटामिन ई कोशिकाओं के अस्तित्व बनाएँ रखने के लिए उनके बाहरी कवच या सेल मेमब्रेन को बनाए रखता हैं। विटामिन ई गेहूँ के बीज, पालक और अन्य हरी पत्तेदार सब्जियों में पाया जाता है। विटामिन ई की कमी से शरीर की पेशियों की डिसट्रोफी हो जाती हैं।

विटामिन के– यह विटामिन पशुओं में सामान्य रक्त के थक्के के बनने के लिए आवश्यक होता है। विटामिन के कि कमी से रक्त का धक्का बनने की प्रक्रिया धीमी हो जाती है। इसके कारण अक्सर रक्तस्त्राव होने लगता हैं। पशुओं के लिए इस विटामिन का सबसे अच्छा स्त्रोत हरी पत्तियाँ हैं।

खनिज लवण– खनिज लवण मुख्यतः हड्डियों तथा दाँतों की रचना के मुख्य भाग हैं तथा दूध में भी अत्यधिक मात्रा में स्त्रावित होते हैं। ये शरीर के विभिन्न एन्जाइमों को क्रियाशील बनाने में तथा विटामिनों के निर्माण में काम आकर शरीर की अनेक महत्त्वपर्ण क्रियाओं में प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से भाग लेते हैं। विटामिन की तरह खनिज लवणों की कमी से शरीर में कई प्रकार की बीमारियाँ हो जाती हैं। दुग्ध उत्पादन की अवस्था में गायों व भैंसों को कैल्शियम तथा फॉसफोरस की अधिक आवश्यकता होती है। प्रसूती काल में कैल्शियम की कमी से दुग्ध ज्वर हो जाता है। तथा बाद की अवस्थाओं में दुग्ध उत्पादन धट जाता है।

कैल्शियम– यह हड्डियों तथा दाँतों की रचना करता है ओर उन्हें मजबूत बनाता है, हृदय की प्रक्रिया को सामान्य रखता है, रक्त के जमने में सहायता करता है तथा माँस पेशियों को क्रिया–शील बनाए रखता है। हरी पतेदार फसल खासकर फलीदार फसल कैल्शियम के उपयुक्त स्त्रोत हैं।

फॉस्फोरस– यह चयापचयी प्रक्रियाओं में कैल्शियम तथा विटामिन डी के साथ मिलकर हड्डियों के निर्माण में सहायता करता है तथा मस्तिष्क को मजबूत बनाता है। शरीर में फॉस्फोरस उर्जा प्रदान करने वाले यौगिकों का एक महत्त्वपूर्ण घटक होता है। पशुओं में कैल्शियम तथा फॉस्फोरस के अनुपात का बहुत महत्त्व है। ये अनुपात 1:1 से 2:1 सबसे आदर्श माना जाता है।

सोडियम– यह खनिज लवण साधारण नमक में प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। यह बहिकोशिकीय द्रव का मुख्य संघटक हैं। शरीर में इलेक्ट्रोलाइट संतुलन बनाए रखता है। शरीर के सभी महत्त्वपूर्ण अंगों को क्रियाशील बनाए रखता है और तंत्रिका आवेग संवहन में भी सोडियम की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती हैं।

क्लोराइड– यह भी साधारण नमक का महत्त्वपूर्ण घटक होता है। यह बहि–कोशिकीय द्रव का मुख्य आयन होता है। अम्ल–क्षार संतुलन के लिए आवश्यक होता है और परासरणी संतुलन के लिए आवश्यक होता है और परसरणी संतुलन बनाए रखता है।

मैग्निशियम– यह हड्डियों की सही संरचना और तंत्रिका एवं पेशी की क्रिया–शीलता के लिए जरूरी है और कार्बोहाइड्रेट चयापचयन के लिए उत्प्रेरक का कार्य करता है। जुगाली करने वाले एवं वयस्क पशुओं में मैग्निशियम की कमी से अपतानिका हो जाती है। अपतानिका रसीला चारागाह के सेवन करने के कारण भी हो जाती है।

पोटैशियम– यह अंतः कोशिकीय द्रव का मुख्य घटक हैं। माँस पेशियों के संकुचन व तंत्रिका आवेगों के संचारण के लिए आवश्यक हैं। इसके अतिरिक्त यह अम्ल–क्षार एवं इलेक्ट्रोलाइट संतुलन के लिए आवश्यक है।

लौह– यह हीमोग्लोबिन तथा मायोग्लाबिन में पाया जाता हैं एवं ऊत्तकों में ऑक्सीजन पहुँचाने का कार्य करता है एवं कोशिकीय ऑक्सीडेशन के लिए जरूरी होता है। इसकी कमी से रक्तालपता हो जाती है। लौह की पर्याप्त मात्रा फलीदार पौधों, बीज कोट एवं हरी पतेदार सामग्री में प्रचुर मात्रा में पाई जाती है।

आयोडीन– यह थाइरॉक्सीन के संश्लेषण के लिए आवश्यक होता हैं। यह प्रक्रिया सामान्य कोशिकीय श्वसन को बनाए रखने के लिए जरूरी होता है। आयोडीन की कमी से पशुओं में गण्डमाला होने के लक्षण दिखाई देते हैं। गण्डमाला थाइरॉइड ग्रन्थि का एक इजाफा हैं। थाइरॉयड ग्रन्थि गर्दन, कंठमणि के नीचे स्थित एक छोटी सी ग्रन्थि होती हैं। आयोडीन की कमी के लक्षण पशुओं में गले की सूजन के रूप में दिखाई देते हैं। प्रजनन क्षमता में कमी भी एक प्रमुख लक्षण हैं। गोभी, पत्ता गोभी, सोयाबीन, अलसी, मटर व मूँगफली के अत्यधिक सेवन से भी गण्डमाला होने की आंशका रहती है।

समुद्री मूल के भोजन में (समुद्री शैवाल में) आयोडीन की प्रचुर मात्रा पाई जाती है।

फ्लोरीन– यह हड्डियों और दाँतों को सख्त कर देता है और मुख में जीवाणु क्रिया की दर को कम कर देता है। फ्लोरीन एक अत्यन्त विषैला खनिज है। इसकी विषाक्तता से फ्लोरोसिस हो जाता है। गाय, भेड़ व घोड़ों में प्रदूषित जल, तृण, रॉक फास्फेट (जिसमें फ्लोराइड होता हैं) की धूल के कारण फ्लोरोसिस होने की संभावना रहती है।

सेलीनीयम– यह एंटी ऑक्सीडेन्ट की तरह कार्य करता है एवं कोशिकाओं की प्लाज्मा झिल्ली को टूटने से बचाता है। सेलीनीयम की कमी से मेमनों व दुधारू गायों का वजन कम होने लगता है। सेलीनीयम की अधीकता से पशुओं में क्षार रोग होने की संभावना रहती है।

— □ —

बछड़े-बछडी व कट्ड़े-कटड़ियों की आहार व्यवस्था

अभय सिंह यादव* एवं अंशुल लाठर**

*विस्तार शिक्षा निदेशालय, **पशु सूक्ष्म जीवी विभाग
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

आमतौर पर यह देखने मे आया है कि बढ़वार वाले पशु यानि बछड़े–बछड़ी व कटड़े–कटड़ियों को बहुत ही कम पौष्टिक हरा चारा दिया जाता है तथा सन्तुलित दाने का मिश्रण भी नहीं दिया जाता। कभी–कभी तो उनको दुधारू गाय भैंस का बचा हुआ चारा ही डाल दिया जाता है जिससे इनकी बढने की प्रक्रिया प्रभावित होती है तथा उत्पादन क्षमता पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है। बढ़ने वाले पशुओं पर सबसे कम ध्यान दिया जाता है क्योंकि उससे हमें प्रत्यक्ष रूप में कोई लाभ दिखाई नहीं देता लेकिन डेयरी व्यवसाय को सफल बनाने के लिए यह आवश्यक है कि बढ़ने वाले पशुओं पर विशेष ध्यान दिया जाए। स्वस्थ बढ़ने वाले पशु ही बड़े होकर अच्छे दुधारू पशु बनते है व स्वस्थ बच्चों को जन्म देते हैं। चूंकि पशुपालन की कुल लागत का लगभग 70 प्रतिशत भाग खान–पान पर खर्च होता है इसलिए यह भी महत्त्वपूर्ण है कि आहार सन्तुलित हो। पशुओं के आहार की मात्रा उनके आयु वर्ग एवं शारीरिक वजन पर निर्भर करती है। बछड़े–बछड़ी व कटड़े–कटड़ियों के खान–पान से सम्बन्धित कुछ निम्नखित बातें ध्यान देने योग्य है–

जन्म से तीन माह तक का खान–पान

1. नवजात बच्चों के जन्म के एक–दो घण्टे के उपरान्त बिना किसी चूक के उन्हें 1–2 कि. ग्राम खीस आहार के रूप में अवश्य दें। उसके बाद 8 घण्टे बाद फिर 1 कि. ग्राम तक खीस दे देना चाहिए तथा 24 घण्टे बाद दिन में दो बार तीन दिन तक यही आहार देना चाहिए। आहार की कुल मात्रा एक दिन के लिए पशु के शरीर के वजन की 10 प्रतिशत तक की दर से देनी चाहिए। उपरोक्त आहार से बढ़वार वाले पशुओं के शरीर में अनेक बिमारियों से लड़ने की क्षमता पैदा हो जाती है तथा नवजात बच्चे स्वस्थ रहते है तथा उनकी बढ़वार भी तेज होती है।
2. नवजात सभी बच्चों को 60 दिन की आयु तक उबला हुआ दूध (जिसका तापमान शरीर के तापमान के बराबर) प्रतिदिन पिलाना चाहिए। पहले तीन सप्ताह तक शरीर के वजन के 10 प्रतिशत, अगले दो सप्ताह तक 15 प्रतिशत तथा उसके बाद 20 प्रतिशत की दर से निर्धारित करनी चाहिए तथा इस अवधि में यदि उसका आहार उपयुक्त है तथा बढ़ोत्तरी सन्तोषजनक है तो वह अपने जन्म के समय के वजन से दो गुना हो जाता है।
3. काफ स्टार्टर राशन– आयु के एक सप्ताह के बाद दिया जाना चाहिए तथा निम्न तालिका के अनुसार तैयार किया जाता है।

संघटक (पदार्थ) का नाम	*भाग कि. ग्रा. प्रति 100 कि.ग्रा.*
जौ/मक्का/जई	*50*
मूंगफली/सरसों/तिल की खली	*30*
गेहूँ/चावल का चोकर	*7*
मछली का चूरा	*10*
खनिज मिश्रण	*2*
साधारण नमक	*1*

4. 7–10 दिन के पशुओं को 'लेग्यूम हे' (दलहनी चारे की हे) या हरी पत्तियों का चारा पर्याप्त मात्रा में देना शुरू कर देना चाहिए।
5. 20 प्रतिशत खनिज मिश्रण युक्त नमक वाली ईंट चाटने के लिए खुली रख देनी चाहिए।
6. दूध या कॉफ स्टार्टर में 30 ग्राम प्रति क्विंटल के हिसाब से जीवाणु नाशक (एंटीबायटिक) भी मिलाने चाहिए।

तीन महीने की उम्र के बाद का खान–पान– तीन महीने से अधिक आयु वाले बछड़े–बछड़ी व कटड़े–कटड़ियों को उनके शरीर के वजन व रोजाना बढ़ोतरी की दर से आहार दिया जाना चाहिए। इस समय के आहार मे दानें का उपयोग अनिवार्य है। चूंकि दानें की कीमत ज्यादा हो रही है इसलिए यह भी कौशिश होनी चाहिए कि दानें की मात्रा को पौष्टिक हरे चारे के उपयोग से कम किया जाए। दलहनी चारे जहाँ रसदार, स्वादिष्ट व उच्च दर्जे के पौष्टिक होते हैं वहाँ वे आहार की लागत में कमी लाने के साथ–साथ भूमि की उपजाऊ शक्ति को भी बढ़ाते हैं। ज्वार–लोबिया मिश्रण भी लाभदायी होता है। आहार का निर्धारण निम्न प्रकार से किया जा सकता है–

आहार तालिका

अनुमानित वजन आहार	*150 कि. ग्रा. मात्रा (कि.ग्रा.)*		*200 कि. ग्रा. व अधिक मात्रा (कि. ग्रा.)*		
	1	*2*	*1*	*2*	*3*
	रबी (पर्याप्त हरा चारा उपलब्ध)		*(हरा चारा उपलब्ध नहीं)*	*(रबी हरा चारा पर्याप्त नहीं)*	*खरीफ*
बरसीम–रिजका	*10–12*	–	–	*6–10*	–
बरसीम–जई	*10–12*	–	–	–	–
हरी मक्का व लोबिया	–	*10*	–	–	–
ज्वार/हरी मक्का	–	*1.5–2.0*	*3.5*	*2.0*	*2.5*
दाने का मिश्रण	–	–	*3.0–4.0*	*3.0–4.0*	*2.0–3.0*

चारा फसलों की किस्में

हरे चारे की फसलों की उन्नत किस्में निम्नलिखित हैः–

ज्वार : स्वीट सूडान घास– 59–3, एच.सी.136, एस.सी.136, एस. सी.260, एच.सी.171., एच.सी.308

बाजरा : एचच सी–4, सच.सी.10 या कोई भी संकर बाजरे की दूसरी पीढ़ी का बीज अन्य स्थानीय किस्में से अधिक पैदावार देता है।

ग्वार : एच.एफ जी–156, एफ.एस–277

नेपियर बाजरा (संकर हाथी घास) : एन.बी.एच–21

लोबिया : एफ.आ.एस.1, न. 10, एच.एफ.सी. 42–1

जई : ओ.एस–6, ओ.एस–7 एच.जे.–8, एच.एफ.ओ.–114 (हरियाणा जई)

मक्का : अफ्रीकन टाल, जे–1006, विजय या कोई भी शंकर या मिश्रित मक्का जो पहले दाने के लिए लगाई गई हो।

बरसीम : मस्कावी, पूसा जायन्ट

रिजका (लूसर्न) : लूसर्न टी–9

जिन महीनों में आपके पास हरा चारा जरूरत से ज्यादा उपलब्ध हो तो उसको सुखा कर 'हे' व संरक्षित करके साइलेज बना सकते है। यह 'हे' व 'साइलेज' चारे की कमी वाले महीनों में जैसे अक्तूबर–नवम्बर व मई–जून में पशुओं को खिला सकते हैं। इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि लगभग 80 कि.ग्रा. शरीर के वजन होने पर पशु 2.5 से 2.7 कि.ग्रा. प्रति 100 कि. ग्रा. शरीर वजन की दर से शुष्क पदार्थ खा सकता है। उपरोक्त सन्तुलित आहार देने से पशुओं में होने वाली अनेक समस्याएं नहीं होती तथा शरीर वृद्धि सामान्य होती रहती है तथा असन्तुलित आहार के मुकाबले प्रथम ब्यांत की उम्र 6–12 महीनें तक घट सकती है। बछड़ियों व कटड़ियों को प्रोटीन देने के लिए दाना मिश्रण में सरसों/मूंगफली व बिनौला आदि की खल से आहार के रूप में देना चाहिए। रबी मौसम में हरी पत्तियों वाले चारे की मात्रा बढ़ जाती है तब दाना मिश्रण में अनाजों का अनुपात बढ़ा देना चाहिए ताकि पशुओं की ऊर्जा की आवश्यकता पूरी हो सके।

— □ —

पशुओं का प्रमुख आपदाओं के दौरान प्रबन्धन

विक्रम जाखड़ एवं अभय सिंह यादव

पशु अनुवांशिकी एवं प्रजनन विभाग

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

अकाल

देश के किसी भाग में कई वर्षों से औसत वर्षा का यदि 90 प्रतिशत कम बरसात होती है तो उस स्थिति को अकाल माना जाता है किंतु यही अकाल यदि लगातार कई वर्षों तक बना रहता है तो किसानों के लिए दुखदायी हालात बन जाते हैं। मानसून के मौसम में पानी न बरसने पर खेती व पशुपालन से वांछित उत्पादन नहीं मिलता है। पिछली शताब्दी के दौरान देश को कई बार गंभीर अकाल झेलने पड़ें हैं। अकाल के लिए संवेदनशील क्षेत्रों से पशुधन का निष्क्रमण चारा–पानी की जरूरत को पूरा करने के लिए तेजी से होने लगता है। प्रभावित क्षेत्रों में पानी के दुरूपयोग पर रोक, पशुओं के क्रय–विक्रय की व्यवस्था गोशालाओं में चारा पानी का इंतजाम चारा बहुत क्षेत्रों से आपूर्ति तथा भूख से न मरें इस बात की व्यवस्था तथा निष्क्रमण मार्ग पर आहार, पानी एवं दवा का इंतजाम, योजनाबद्ध ढंग से किया जाना चाहिए। अकाल के दौरान पशुओं के शरीर मे आई कमी बछड़ों व मेमनों में कमजोरी, मादा में बांझपन, रोगों के प्रति उपजी संवेदनशीलता तथा मृत्यु जैसी स्थितियों को हल करने की व्यवस्था भी की जानी चाहिए। अकालग्रस्त क्षेत्रों के किसानों पशुपालकों के कर्जे में ब्याज की वसूली में छूट या माफी तथा नए पशुओं की खरीद के लिए ब्याज रहित ऋण की व्यवस्था राहत कार्य का अंग होना चाहिए।

बाढ़

हमारे देश में बाढ़ देश के किसी न किसी हिस्से में लगभग प्रत्येक वर्ष कहर ढ़ाती है। असम, बिहार, उत्तर–प्रदेश, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल में बाढ़ के प्रकोप से हर साल हजारों लाखों लोग बेघर होते हैं और करोड़ों की फसल, पशुधन व जानमाल का नुकसान होता है। यह क्रम स्थायी एवं दूरगामी व्यवस्था न होने के कारण लगभग हर साल देखने मे आता है। बाढ़ संभावित क्षेत्रों में वर्षा के साथ ही लोगों को उनके पशुधन के साथ ऊँचे स्थानों पर बसाया जाना ही एक मात्र उपाय होता है। अधिक वर्षा व बाढ़ से पशुओं को रोग होने लगते हैं। इनमें गलघोटू, त्वचा के रोग, नयूमोनिया, परजीवी संक्रमण एवं खुर के रोग तथा उचित आहार न मिलने से शरीर भार में गिरावट व पशुओं की उत्पादन क्षमता में कमी जैसी हानियां होती हैं।

बाढ़जन्य आपदा प्रबंधन में निम्न बातों का ध्यान रखा जाना चाहिएः–

1. वर्षा एवं बाढ़ की भविष्यवाणी

- बाढ़ के संभावित क्षेत्रों की पहचान
- सुव्यसस्थित सिंचाई तंत्र का निर्माण
- जल–मल के निकास की सही व्यवस्था
- बाढ़ प्रभावित या संभावित क्षेत्र से जन व पशुधन को सुरक्षित स्थान पर ले जाना
- पशु व मनुष्यों में टीकाकरण
- तत्कालिक रोगों की उपचार व्यवस्था

वस्तुतः बाढ़ एवं सूखा भारत में सिक्के के दो पहलू के स्थापित हो चूके हैं। इस भू–भाग के कुछ देशों के किसी क्षेत्र में बाढ़ एवं सूखा कमी से छुटकारा पाने के लिए जल सरंक्षण ही एक मात्र विकल्प बचता है। जल के उचित संरक्षण उपायों मे बांध बनाना नदियों को जोड़ना, नहरों का निर्माण और देश में उपलब्ध संपूर्ण जल को देश में ही एक दिशा से दूसरी दिशा में घूमाकर

काम में लेना उपयुक्त कदम होगा। नदियों के जोड़ने का कार्य ही इन आपदाओं का स्थायी हल हो सकता है तथा भारत एवं पड़ोसी देशों को बाढ़ एवं सूखा की विभीषिका से राहत दिला सकता है। उदाहरण के लिए दामोदर घाटी बांध परियोजना जैसी व्यवस्था से न केवल बाढ़जन्य आपदा से राहत मिलती है बल्कि बिजली भी मिलती है। जल संरक्षण के लिए कुछ और प्रयास भी किए जा सकते हैं जैसे फसल या खेत की परंपरागत ढंग से सिंचाई में पानी काफी व्यर्थ हो जाता है और यही पानी स्प्रिंकलर विधि अपनाकर काफी हद तक बचाया जा सकता है। इसी प्रकार वर्षा का जल घरों में संग्रहण किया जाना भी एक अन्य उपाय है।

अग्नि दुर्घटनाएँ

जंगल में आग लगने पर खुले घूम रहे वन्य जीवों के मरने की संभावना अधिक नहीं होती किंतु बाँध कर रखे गए पशु बहुधा आग लगने पर बुरी तरह जल जाते हैं। सूखाग्रस्त क्षेत्रों में चारे का भंडार पशु बाड़े के आसपास ही किया जाता है। आग लगने पर गाँव में काँटेदार झाड़ियों से घिरे बाड़ में मौजूद पशुओं को सुरक्षित निकाल पाना कठिन हो जाता है। राजस्थान में चारे के ढेर में लगी आग से पशुओं के जलने या जलकर मरने की दुर्घटनाएं बहुधा होती रहती है। कई क्षेत्रों में पानी की कमी या अग्निशामक दल दूर होने पर जन–धन की हानि बहुत अधिक होती हैं। अपने देश में पशुपालन व कृषि के परम्परागत तरीकों में अभी तक अग्निशामक व्यवस्था का कोई स्थान नहीं है किंतु पशु पालन से जुड़े आग बुझाने वाले एवं आग की सूचना देने वाले यंत्रों की उपलब्धता जरूरी है। धुआँ सूचक व्यवस्था अपनाने पर अग्नि दुर्घटनाओं में 50–60 प्रतिशत की कमी आई और कम पशुओं की मृत्यु देखने में मिलती है।

सुरक्षात्मक उपाय

1. पशुपालन प्रक्षेत्रों में कार्यरत सभी कर्मचारियों को अग्निशामक व्यवस्था की जानकारी दी जानी चाहिए।
2. अग्निशामक दल के कर्मचारियों को समय–समय पर प्रशिक्षण एवं कवायद कराते रहना चाहिए।
3. आग लगने पर पशुओं को संभालने के ढंग की जानकारी भी दी जानी चाहिए।
4. बड़े पशुओं को अग्निशामक दस्ते की पोशाक से परिचित कराया जाना चाहिए ताकि मौके पर रंग देखकर भड़के नहीं।
5. पड़ोसियों को भी ऐसी दुर्घटनाओं के प्रति सावधान व सजग रहने की जानकारी आवश्यक होती है।
6. चरागाह के बीच–बीच में ट्रैक्टर की मदद से चौड़ी पट्टियाँ बना देनी चाहिए, ताकि आग लग जाने पर वह आगे न बढ़ पाए और उस पट्टी पर पशु खड़े किये जा सकें तथा जरूरी वाहन भी आ जा सके।
7. पशु बाड़ों में प्रवेश द्वार के अतिरिक्त एक अन्य आकस्मिक द्वार का प्रावधान भी रखना चाहिए।
8. आकस्मिक उपयोग के लिए जलस्त्रोत के पास लम्बे पाइप व पानी की टंकी की व्यवस्था होनी चाहिए।
9. समीपी थाना, प्रशासनिक कार्यालयों एवं अग्निशामक दल का फोन नम्बर भी मुख्य भवन के आसपास दर्शाया जाना चाहिए।
10. अग्नि दुर्घटना की जानकारी देने वाली आधुनिक सुविधाओं यथा धुआँ सूचक यंत्र संवेदनशील स्थानों पर लगाया जाना चाहिए।

ग्रामीण स्थितियों में कुछ और बातों का ध्यान रखा जाना चाहिए

1. चारा व पशु बाड़े अलग–अलग बनाए जाने चाहिए तथा भंडारित चारे के ढेर भी अलग हो तो अच्छा होगा।
2. पशुचारा व चारा भंडार के ऊपर या आसपास से अवैध या असुरक्षित तरीके से बिजली के

तार/कनैक्शन न लें तथा बिजली के तारों के आसपास चारे का भंडारण न करें और ऐसे स्थान पर पशुशाला न बनाएँ।

3. पशुशाला या चारा भंडार के पास रेत से भरे कट्टे / फावड़ा/ वेलचा आदि की व्यवस्था रखें।
4. खलिहान में काम करते समय या रखवाली के समय बीड़ी, तम्बाकू एवं शराब न पिएँ और न ही किसी और को पीने दें।
5. खेत खलिहान में खाना बनाने के बाद आग पूरी तरह बुझा दें।
6. पड़ोसियों में अग्नि दुर्घटनाओं का ध्यान रखने की जिम्मेवारी व समझ की पालना करें।
7. क्षेत्रीय प्रशासन व अग्नि शामक दस्ते का फोन नम्बर अपने पास अवश्य रखें।

खतरनाक सामग्रियाँ व रसायन

अकाल, बाढ़ एवं आग की आपदाओं के अतिरिक्त खतरनाक सामग्रियों या रसायनों (खतरनाक + रसायन – खतरसायन) के फैल जाने से भी क्षेत्रीय लोगों व पशुओं को खतरा पैदा हो जाता है। बहुआयामी सामाजिक विकास के साथ ही खतरनाक सामग्रियों व रसायनों की दुर्घटनाओं की संभावना अधिक हो जा रही हैं समुन्द्र में तेल का फैलाव, समुद्री जीवों के लिए तथा तेल की पाइप लाइनों से तेल का रिसाव स्थानीय संकट पैदा कर देता है। गैस पाइप लाईन में विस्फोट समीपी क्षेत्र के वातावरण को प्रदूषित करता है। खतरनाक रसायनों से उत्पन्न आपदा को सँभालने के लिए प्रशिक्षित लोगों की जरूरत होती हैं अतः आम लोगों को यथासंभव दूर रहकर प्रशासन की मदद करनी चाहिए। अमेरिका जैसे विकसित देश में जहाँ सुरक्षा के व्यापक प्रबंध व प्रशिक्षण की व्यवस्था है, वहाँ भी 5 वर्ष की अवधि में लगभग 34500 खतरनाक रसायनिक दुर्घटनाओं से मानव समाज प्रभावित हुआ और आश्चर्यजनक स्थिति यह रही कि प्रभावित लोगों में मात्र 20 प्रतिशत लोगों को ही तत्काल उपचार दिया जा सका। विकासशील देशों में भी ऐसी आपदाओं को संभालने की व्यवस्था विकसित की जा रही है।

सुनामी जैसी आपदा से समुन्द्री जल में भारी जहरीले रसायनों के पहुँच जाने की संभावना से नकारा नहीं जा सकता। कालांतर में मछलियों एवं समुन्द्री जीवों से तैयार मानव व पशु आहार में भी खतरनाक रसायन हो सकते हैं। भोपाल गैस त्रासदी से प्रभावित लोगों में तात्कालिक मृत्यु के अतिरिक्त विषाक्तता का कुप्रभाव लम्बे समय तक असर दिखाता रहा है। गर्मी के दिनों में सड़कों के किनारे फैले कोलतार से कहीं पशु की त्वचा व पंख बहुधा प्रभावित होते हैं जिसके फलस्वरूप उन्हें श्वसन व पाचन तंत्र संबंधी कठिनाइयाँ झेलनी पड़ती है।

रसायनिक दुर्घटना होने पर तात्कालिक उपाय

1. स्थानीय थाना या प्रशासन को तत्काल सूचित करना चाहिए।
2. आम आदमी को ऐसी दुर्घटना से दूरी बनाए रखनी चाहिए।
3. पशु एवं मानव चिकित्सा विभाग को भी जानकारी देनी चाहिए।
4. आपदा प्रबंधन से जुड़े लोगों व तकनीकी संस्थाओं से सलाह लेकर आपदा प्रबंधन हेतु जरूरी कदम उठाए जाने चाहिए।
5. प्रभावित क्षेत्रों में तकनीकी राय के अनुसार ही पशुओं को चराने के लिए ले जाएँ।

व्यवसायिक सुरक्षा एवं स्वास्थ्य प्रशासन जैसी इकाइयाँ ऐसे सन्दर्भ में महत्त्वपूर्ण योगदान करती हैं। हमारे देश में भी आपदा प्रबंधन के लिए केन्द्र व राज्य स्तर पर विशेषज्ञों युक्त सक्रिय इकाइयों की स्थापना की गई है।

— □ —

मुर्गियों में बिछावन की भूमिका एवं महत्त्व

विशाल शर्मा एवं राहुल कुमार

पशु उत्पादन एवं प्रबंधन विभाग

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

मुर्गी पालन न केवल एक स्थापित रोजगार के रूप में सामने आया है बल्कि कई लोगों ने इसे व्यापक स्तर पर अपनाकर मुनाफा भी कमाया है और साथ ही इसे मुख्य रोजगार के रूप में भी अपनाया है। देशभर में जो लोग खेती व अन्य व्यवसायों से जुड़े हैं, वे सभी मुर्गीपालन को व्यापारिक मुनाफे की नजर से देख रहे हैं। ऐसी स्थिति में मुर्गीपालन व इसके प्रबंधन से संबंधित विषयों में गहन ज्ञान होना बहुत जरूरी है। मुर्गीपालक को मुर्गियों की नस्ल, उनके लिए पोषक आहार, टीकाकरण और अन्य प्रबंधन संबंधी विषयों के बारे में जानकारी होना बहुत जरूरी है।

ब्रोयलर मुर्गी का पालन मांस उत्पादन के लिए किया जाता है। ब्रोयलर मुर्गी के बच्चों को पिंजरे के बजाय फर्श पर बिछावन डालकर पालते हैं। एक बच्चे के लिए औसतन 1 वर्ग फुट जगह की जरूरत होती है। बिछावन की गहराई 2 से 5 इंच तक या इससे भी ज्यादा हो सकती है। यह मौसम के तापमान व आद्रता पर निर्भर करती है।

एक अच्छे बिछावन की पहचान उसकी नमी सोखने की क्षमता पर निर्भर करती है। बिछावन सामग्री फर्श के सतह क्षेत्र को बढ़ाती है और उसको जल्दी सूखने में मदद करती है। बिछावन पक्षी को और उसकी मलिच खाद के सम्पर्क को कम करता है और साथ ही उन्हें अमोनिया गैस के हानिकारक प्रभावों से बचाता है। बिछावन सीलन व ठंड से भी बचाव करता है। बिछावन का चुनाव उसकी नमी सोखने की क्षमता, बाजार मूल्य, स्थानीय उपलब्धता और उसके विषम प्रभाव को लेकर किया जाता है। बिछावन सामग्री पक्षियों के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक नहीं होनी चाहिए। चावल का छिलका और लकड़ी का बुरादा आजकल प्रचलन में है, पर इनका बाजार मूल्य अधिक होने के कारण अन्य वैकल्पिक सामग्रियों को बिछावन के रूप में इस्तेमाल कर सकते हैं।

मुर्गियों के आहार में प्रयोग होने वाली सामग्री में मक्की और सोयाबीन प्रमुख है जिनका बाजार मूल्य तेजी से बढ़ रहा है। इसके कारण ब्रोयलर उत्पादन का खर्चा बढ जाता है। अतः हमे विकल्प खोजने की जरूरत है। इसलिए हम चावल के छिलके और बुरादे की बजाय दूसरी स्थानीय सामग्रियों का इस्तेमाल कर सकते है जो इन्हीं की तरह नमी सोखने वाले हो और सस्ती भी हो। साथ ही साथ पक्षियों के लिए हानिकारक भी नहीं होनी चाहिए।

भारत एक कृषि प्रधान देश है। चावल व गेंहूँ उत्तर भारत की प्रमुख फसले हैं। फसल कटाई के बाद किसान इनके बचे हुए हिस्सों को खेतों में जला देते है जो की प्रदूषण का कारण बनते है। इसे तुड़ी में बदलकर हम इसे बिछावन सामग्री के रूप में इस्तेमाल कर सकते है। इसके अलावा स्थानीय उपलब्ध वस्तुओं को भी बिछावन के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है जैसे की सूखे पत्ते, मक्की के पिसे हुए बुटटे, मक्की व ज्वार की तूड़ी, रेत इत्यादि। किसी भी बिछावन सामग्री को इस्तेमाल करने से पहले यह सुनिश्चित कर ले की वह पक्षियों के लिए हानिकारक न हो। ज्यादातर स्थानीय सामग्रियों में धूल जमी होती है जो ब्रायलर पक्षियों में सांस संबंधी बीमारी पैदा कर सकती है।

बिछावन की क्षमता को कम करने के कारण

1. शेड में से हवा पास न होना।
2. पीने के पानी के प्रबंधन में त्रुटियाँ।
3. उच्च लवणीय एवं प्रोटीन आहार।

4. बिछावन की अपर्याप्त गहराई।
5. कम जगह में ज्यादा ब्रायलर पक्षी रखना।
6. बिछावन की खराब गुणवत्ता।
7. शेड में अत्यधिक नमी।
8. पक्षियों में एंर्टराइटिस की बीमारी आना।

बिछावन प्रबंधन

यदि बिछावन में नमी की मात्रा बढ़ जाती है तो किसान बिछावन सामग्री की मात्रा बढ़ा सकते है। शेड से नमी को कम करने के लिए हवा का पास होना अति आवश्यक है, इसलिए इस और अवश्य ध्यान देना चाहिए। बिछावन सामग्री में नमी की मात्रा 30 प्रतिशत से ज्यादा नहीं होनी चाहिए। नमी की मात्रा ज्यादा होने पर कोक्सीडीयोसिस नामक बीमारी के हालात बन जाते है। यह एक बहुत ही तेजी से फैलने वाली बीमारी है। इसकी रोकथाम के लिए बिछावन में नमी का नियंत्रण बहुत जरूरी है।

बिछावन में नमी बढ़ने पर अमोनिया गैस भी पैदा होती है। मुर्गियों के शेड में अमोनिया गैस को आसानी से पहचाना जा सकता है। अमोनिया की गंध बहुत तीखी होती है। साथ ही यह आँखों व त्वचा पर जलन भी पैदा करती है। गंध की मात्रा बढ़ने पर यह देखे की शेड से हवा पर्याप्त मात्रा में पास हो रही है अथवा नहीं। शेड में पंखे का इस्तेमाल भी किया जा सकता है। पानी के बिछावन के ऊपर गिरने से भी नमी की मात्रा और बढ़ जाती है। अतः पानी का प्रबंधन उचित होना चाहिए।

आहार के रूप में बिछावन सामग्री का उपयोग

प्रयोग किये जा चुके बिछावन को हम भण्डारण कर, उसमें पैदा होने वाले बैक्टीरिया को खत्म कर सकते हैं और इसका उपचार कर इसको जुगाली करने वाले पशुओं के लिए आहार के रूप में इस्तेमाल कर सकते हैं। बिछावन सामग्री को आहार के रूप में प्रयोग करने के लिए उसमें प्रोटीन की मात्रा 18 प्रतिशत से ज्यादा होनी चाहिए। कम प्रोटीन की अवस्था में हम इसे खाद के रूप में प्रयोग कर सकते है। बिछावन को उपचार करने के लिए हम दही को कल्चर के रूप में प्रयोग कर सकते है और मोलासिस को ऊर्जा स्त्रोत के रूप में प्रयोग कर सकते हैं। फिर इस सामग्री को पॉलिथीन से ढक कर रख देते हैं ताकि इससे हवा पास न हो और तीन–चार हफ्ते बाद इसे खोलकर आहार के रूप में इस्तेमाल कर सकते हैं।

खाद के रूप में बिछावन का उपयोग

बिछावन सामग्री को खाद के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। बिछावन सामग्री को थोड़े समय के लिए भण्डारण करते हैं ताकि हानिकारक बैक्टीरिया मर जाए और इसकी गुणवत्ता बढ़ सके। बिछावन सामग्री को खेत में प्रयोग करने से पहले कृषि वैज्ञानिक से इसका परीक्षण जरूर करवायें। इससे हमें इसकी नाईट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटेशियम की मात्रा का पता लग जाता है। इसके बाद आवश्यकतानुसार कृत्रिम खाद मिला कर इसे खाद के रूप में इस्तेमाल कर सकते हैं।

— □ —

एनाप्लाज्मोसिस-दुधारू पशुओं का एक घातक रोग

साक्षी चौहान* एवं विपुल ठाकुर**

*पशु परजीवी विज्ञान विभाग, पशु चिकित्सा एवं पशुपालन विज्ञान महाविद्यालय, पंतनगर

**पशु रोग जाँच प्रयोगशाला, भिवानी

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

एनाप्लाज्मोसिस गोवंशीय एवं महिषवंशीय को प्रभावित करने वाला घातक रोग है, जो कि *एनाप्लाज्मा मारजीनेल एवं एनाप्लाज्मा सेंट्रेल* नामक रक्त परजीवियों द्वारा होता है। पशुओं में यह रोग, प्रायः वर्षा ऋतु में अधिक होता है क्योंकि इस रोग को फैलाने वाले मक्खी, मच्छर, किल्ली इत्यादि की संख्या इस मौसम में अधिक होती है। इनके इलावा परजीवी का संक्रमण दूषित सूई, सींग काटने के उपकरण, बधियाकरण चाकू एवं टैटू उपकरणों आदि के माध्यम से भी प्रेषित होता है।

रोग के प्रभाव एवं लक्षण

लाल रक्त कोशिकाओं में पाया जाने वाला यह परजीवी पशुओं के स्वास्थ्य पर विभिन्न प्रभाव डालता है। इस रोग की शुरूआत अनियमित बुखार से होती है। यह परजीवी रक्त कोशिकाओं को नष्ट कर देता है, जिसके कारण पशुओं में कमजोरी, एनीमिया, भूख की कमी, अवसाद, दुग्ध उत्पादन में कमी, पीलिया, श्लेष्मा झिल्ली का पीलापन, वजन में कमी, साँस लेने में परेशानी, अनियंत्रित व्यवहार एवं गर्भपात आदि समस्यायें उत्पन्न होती है। लाल रक्त कोशिकाओं की कमी के कारण, मस्तिष्क को मिलने वाली ऑक्सीजन में कमी आ जाती है, जिसके फलस्वरूप पशु आक्रामक या अनियंत्रित व्यवहार भी कर सकते हैं।

रोग की जाँच

रोग की जाँच हेतु परजीवी एवं रोग को फैलानें वाली टिक्स (चिचिड़ियों) की उस क्षेत्र में उपस्थिति की जानकारी होना आवश्यक है। मुख्यतः रक्त के नमूने की जाँच द्वारा रोग की जाँच की जाती है, जिसमें लाल रक्त कोशिकाओं में परजीवी को माइक्रोस्कोप द्वारा देखा जा सकता हैं। इसके अलावा सी.एफ.टी. तथा एफ.ए.टी. तकनीकों द्वारा भी परजीवी की जाँच की जा सकती है।

उपचार

रोग के उपचार हेतु पशुओं को टेट्रासाइक्लीन का इंजेक्शन 6–10 मि0ग्रा0 प्रति कि0 ग्रा0 वजन की दर से माँसपेशियों में तीन दिन तक दिया जाता है। इसके साथ–साथ विटामिन एवं खनिज मिश्रण भी देने चाहिए। गंभीर रूप से एनीमिया से ग्रसित पशुओं को आयरन के इंजेक्शन भी लगाने चाहिए।

बचाव व नियंत्रण के उपाय

रोग की रोकथाम के लिए पशुओं के स्वास्थ्य की नियमित जाँच आवश्यक है तथा रोगी पशुओं को चिन्हित कर उन्हें स्वस्थ पशुओं से अलग रखकर उनका उचित उपचार करना चाहिए। कीटनाशकों के प्रयोग द्वारा इस परजीवी को फैलाने वाले टिक्स एवं अन्य कीटों का नियंत्रण किया जा सकता है। पशुओं को टीके लगाते समय प्रत्येक पशु के लिए नई सुई का इस्तेमाल करना चाहिए। पशुशाला में मच्छरों–मक्खियों का प्रवेश रोकने हेतु जाली वाले रोशनदान व खिड़कियाँ लगानी चाहिए।

पशुओं के आवास स्थल को स्वच्छ रखना चाहिए एवं वर्षा ऋतु में पशु एवं उनके आवास स्थल को हफ्ते में एक या दो बार कीटनाशक से धोना चाहिए। इस रोग से बचाव हेतु एनाप्लाज, प्लाजवैक तथा एनावैक टीके भी बाजार में उपलब्ध है। ये टीके पशुओं को 6–12 महीने की आयु के बीच में लगाये जाने चाहिए तथा प्रतिवर्ष इन्हें दोहराय्याना चाहिए।

अतः पशुपालकों को उपरोक्त वर्णित लक्षणों की उपस्थिति होने पर तुरंत पशु चिकित्सक को सूचित करना चाहिए तथा तुरन्त उपचार द्वारा पशुओं को इस परजीवी से होने वाली हानियों से सुरक्षित रखना चाहिए ताकि पशुओं से अधिकतम उत्पादन मिल सके।

— ▯ —

बछड़ों में निमोनिया रोग

महावीर चौधरी* एवं ममता कुमारी**

*पशु अनुवांशिकी एवं प्रजनन विभाग, **पशु चिकित्सा विकृति विज्ञान विभाग
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

बछड़ों में निमोनिया रोग डेयरी पशुओं के झुंड में एक बड़ी समस्या है। डेयरी बछड़ों में यह अधिक पाया जाता है। यह एक मल्टीफेक्टोरियल रोग है जो जीवाणु एवं विषाणु दोनों से ही होता है। जैसे कि– विषाणु–एडीनो वायरस, हेरपीस वायरस, पैराइंफ्लुएंजा वायरस–3 और जीवाणु–पास्चुरेल्ला, कोरायनिबेक्टेरिया आदि। यह 2–6 महीने की उम्र के बछड़ों में अधिक पाया जाता है। कभी–कभी यह अधिक उम्र के बछड़ों में भी पाया जाता है। यह बाहर रखे गये बछड़ों की तुलना में घर पर रखे गये बछड़ों में अधिक पाया जाता है।

कुछ पर्यावरणीय और प्रबंधनीय कारक इस बीमारी के होने की संभावना को बढ़ाते हैं जैसे कि कम पर्यावरण तापमान और उच्च आद्रता, अपर्याप्त वेंटिलेशन, भीड़, अलग–अलग उम्र के बछड़ों को एक साथ रखना आदि। इस रोग की शुरूआत ज्यादातर तनाव पूर्ण स्थितियों से होती है। तनाव पूर्ण स्थिति में पहले विषाणु द्वारा संक्रमण होता है और फिर बैक्टीरिया द्वारा जीवाणु/विषाणु श्वास–नली द्वारा फेफड़ों में पहुंचकर अपनी संख्या में वृद्धि करते हैं और एक तरल पदार्थ उत्पन्न करते हैं जिसके कारण फेफड़ों को वायु शुद्धिकरण में समस्या होती है और बछड़े को श्वास लेने में कठिनाई होती है।

रोग का फैलाव

– यह रोग बीमार बछड़ों के सीधे संपर्क में आने से और हवा के द्वारा स्वस्थ बछड़ों में फैलता है।

रोग के लक्षण

– तेज बुखार होना (105–107°F)।
– सांस लेने में तकलीफ होना और सांस की आवाज़ का तेज एवं कर्कश होना।
– मुंह खोलकर सांस लेना।
– नाक से स्त्राव।
– बछड़ों का सुस्त व उदास होकर एकांत में रहना।
– भोजन का सेवन कम या बंद कर देना।

निदान

– लक्षणों के आधार पर पशुचिकित्सक द्वारा उपचार किया जाता है।
– बछड़ों की उम्र एवं मौसम के आधार पर
– नाक के तरल पदार्थ की जांच कर जीवाणु एवं विषाणु की उपस्थिति के आधार पर उपचार हेतु नजदीकी पशु चिकित्सक से संपर्क करें तथा शीघ्र इलाज करवाएं।

रोकथाम

– जन्म के 24 घंटों के भीतर बछड़ों को खीस अवश्य पिलाएं।
– बछड़ों की बेहतर देखभाल करें और उन्हें ठंड से बचाकर रखें।
– बछड़ों के बांधने की जगह पर साफ सफाई रखें।
– पर्याप्त वेंटिलेशन का प्रबंधन रखें।
– बछड़ों के पोषण का ध्यान रखें और उन्हें पर्याप्त दूध पिलाएं जिससे की उनका विकास और प्रतिरक्षा प्रणाली बेहतर हो।
– रोग ग्रसित बछड़ों को स्वस्थ बछड़ों से अलग रखें।

— □ —

पशुओं में पाचन संबंधी बीमारियाँ एवं उपचार

मदनपाल एवं दिनेश दहमीवाल

पशु शल्य चिकित्सा एवं विकिरण विभाग

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

पशुओं द्वारा अधिकतम उत्पादन और शारीरिक वृद्धि के लिए उनके पाचन तंत्र का स्वस्थ रहना अति आवश्यक है। पाचन तंत्र द्वारा पशु का शरीर चारे में से आवश्यक पोषक तत्व जैसे वसा, कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, खनिज लवण एवं विटामिन इत्यादि अवशोषित करता है। ये पोषक तत्व पशुओं के सामान्य स्वास्थ्य, दूध उत्पादन, मांसपेशी की वृद्धि एवं प्रजनन के लिए अति आवश्यक हैं। यदि पशु का पाचन तंत्र स्वस्थ है तो उसकी उत्पादन क्षमता भी अधिकतम रहती है।

स्वस्थ पशु खाने के प्रति बहुत लगाव रखते हैं और चारा डालते ही खोर की तरफ तेजी से आते हैं। सामान्यतः किसी भी बीमारी में सबसे पहला लक्षण पशु का चारा छोड़ देना होता है। बड़े फार्म पर, जहाँ सैकड़ों की संख्या में पशु रखे जाते हैं, उनमें से बीमार पशुओं को ढूंढ़ने का यह सबसे आसान तरीका है। गाय–भैंसों में आमतौर पर पाई जाने वाली पाचन संबंधी मुख्य बीमारियाँ, उनके लक्षण एवं उपचार इस प्रकार से हैं–

1. चारा न खाना/कम खाना

कारण

(क) पशु के पेट में कीड़े होना।
(ख) शरीर के किसी अन्य भाग में बीमारी होना, जैसे– निमोनिया, बच्चेदानी का संक्रमण आदि।
(ग) पशु की जाड़ बढ़ना।
(घ) पशु के खून में संक्रमण होना, जैसे– सर्रा आदि।

उपचार

(क) पशु चिकित्सक द्वारा पशु की जाँच करवाना एवं कारण का पता लगा कर उचित इलाज करवाना चाहिए।
(ख) पशु को साल में दो बार पेट के कीड़ों की दवाई अवश्य देनी चाहिएं।
(ग) पशुओं को गलघोंटू व मुँह–खुर के टीके समय पर लगवाना चाहिए।
(घ) अगर पशु के मुँह में खाना इकट्ठा होता हो तो उसमें जाड़ों की समस्या हो सकती है। पशु को अस्पताल में ले जाकर माऊथ–गैग लगवाकर उसके दाँतों व जाड़ों की अच्छी तरह जाँच करनी चाहिए व बढ़ी हुई जाड़ों को घिसवा कर ठीक करवाना चाहिए।

2. पशु के मुँह से चारा गिरना

कारण

(क) पशु की भोजन नली (Oesophagous) का किसी कपड़े, पालीथीन, गाजर, सेब आदि से अवरूद्ध होना।
(ख) पशु में लकवा (Facial Paralysis) नामक बीमारी होना।
(ग) पशु का अत्याधिक अनाज खाना और Lactic Acidaris हो जाना।
(घ) पशु में जाड़ व दाँतों का बढ़ना।
(ड़) पशु के मुँह में शालू बढ़ना।
(च) मुह–खुर बीमारी से ग्रसित होना।
(छ) पशु के पेट में फोड़ा होना (Reticular Abscess)

उपचार

(क) पशु चिकित्सक द्वारा बीमारी का उचित कारण पता लगाया जाना चाहिए। इसके लिए पशु के मुँह व गर्दन का एक्स–रे करवाया जाना चाहिए।

(ख) कई बीमारियों में आपरेशन ही एकमात्र इलाज होता है। आपरेशन के बाद सर्जन की सलाह अनुसार ही पशु का खानपान व देखभाल करनी चाहिए।

3. पाईका/Pica

इस बीमारी में पशु कपड़े, बाल, पालीथीन, गोबर, मिट्टी आदि खाने लग जाते हैं।

कारण– पशु के शरीर में Phosphorous नामक लवण की कमी हो जाना।

उपचार

(क) Sodaphas 20 g प्रतिदिन पशु को खिलाना।

(ख) फास्फोरस के इंजैक्शन (Tonophasphone, Novizac) भी लगवाए जा सकते हैं।

4. दस्त लगना– अधिक मात्रा में बार–बार पतला गोबर करना।

प्रमुख लक्षण

(क) गोबर के साथ खून व आँतों के अंदर की परत (Mucus membrane) का आना।

(ख) पशु का कमजोर होना, आंखे अंदर धंसना, त्वचा का रूखापन व शरीर में पानी की कमी होना।

(ग) कई बार पशु ज्यादा कमजोरी के कारण उठ भी नहीं पाते और उचित इलाज के अभाव में मर जाते हैं।

कारण

(क) पशु के पेट व आंतों में कीड़े होना।

(ख) आंतों में कीटाणु या विषाणुओं का संक्रमण होना जैसे आंतों की टी.बी.।

(ग) अत्याधिक अनाज खा जाना।

(घ) पशु के चारे या बाखर में अचानक बदलाव करना।

उपचार

(क) आंतों में कीटाणुओं के संक्रमण को कम करने के लिए Cflox-TZ, Norflox-TZ, Pabadene, Esulin-MFL आदि के बोलस पशु को देने चाहिए।

(ख) पशु को नस में गलूकोज लगवाना चाहिए एवं Neblon पाऊडर 50 ग्रा. प्रतिदिन खिलाना चाहिए।

(ग) यदि पशु अचानक अत्याधिक दलिया या अनाज खा जाए, तो तुरंत पशु चिकित्सक को बुलाना चाहिए। **कई बार पशु की जान बचाने के लिए आपातकालीन – पेट का आपरेशन** (Rumenotomy) **ही अंतिम उपाय होता है।**

(घ) पशु के चारे में बदलाव धीरे–धीरे एवं कम से कम 20 दिन में करना चाहिए।

5. पशुओं में गोबर का बंधा पड़ना

लक्षण

(क) पशु का कम मात्रा में या बिल्कुल भी गोबर न करना।

(ख) पशु के पेट का फूलना।

(ग) काले रंग का गोबर आना तथा उसमें अत्याधिक मात्रा में जाले से दिखाई देना।

(घ) पशु द्वारा चरना कम कर देना व धीरे–धीरे छोड़ देना।

कारण

(क) पशु के पाचन तंत्र का कपड़े, बाल, पालीथीन आदि से अवरूद्ध हो जाना।

(ख) पशु के पेट व आंतों की कीटाणुओं के संक्रमण के कारण जुड़ जाना।

(ग) पशु की आंतड़ियों का एक दूसरे में घुस जाना (Intestinal Intususception)
(घ) पशु द्वारा अधिक मात्रा में नया तूड़ा खा जाना।
(ड़) पशु के पेट में कीड़े होना।
(च) छोटे कटड़ों में पेशाब रूकना।

उपचार

(क) कीटाणुओं के संक्रमण को खत्म करने के लिए एंटीबायोटिक के इंजैक्शन लगवाने चाहिए।
(ख) नया तूड़ा छान कर व कम मात्रा में पशु को खिलाना चाहिए।
(ग) बंधा खोलने के लिए $MgSO_4$ 400-1000g व Liquid Paraffin 5-10 lt पशु को मुँह द्वारा दिए जाने चाहिए।
(घ) दवाईयों द्वारा ठीक ना होने पर पशु को आपरेशन द्वारा इलाज करवाया जाना चाहिए एवं सर्जन की सलाह अनुसार ही पशु का रखरखाव करना चाहिए।
(ड़) छोटे कटड़ों में जब पेशाब रूक जाता है, तब गोबर भी रूक जाता है। पेशाब का आपरेशन करवाने के बाद, गोबर की समस्या अपने आप ठीक हो जाती है।

6. अफारा आना

लक्षण

(क) पशु के पेट का बांई तरफ से असामान्य रूप से फूल जाना।
(ख) पशु का मुँह खोल कर सांस लेना।

कारण

(क) पशु के पेट में कील, सूंई आदि चुभी होना।
(ख) पशु के शरीर में कीटाणुओं का संक्रमण होना।
(ग) भोजन नली का अवरूद्ध होना।
(घ) छाती का पर्दा फटा होना।
(ड़) पशु द्वारा अत्याधिक अनाज, आटा आदि खाना।

उपचार

(क) अस्थाई उपचार – *Blotinox / Bloatasil- 50* मि.ली. तारपीन का तेल 100 मि.ली. सरसों का तेल) में से कोई एक दवाई पशु को बिना जीभ पकड़े पिलानी चाहिए।
(ख) स्थाई उपचार – यदि कई दिनों से लगातार अफारा चल रहा है, तो पशु का एक्स–रे करवाना चाहिए। यह सुविधा प्रदेश में सिर्फ *TVCC* हिसार में ही उपलब्ध है। इसके बाद आपरेशन द्वारा पेट में चुभे कील सूंई, तार, एवं अन्य वस्तुएँ जैसे पालीथीन, कपड़े आदि निकाल दिए जाते हैं और पशु धीरे–धीरे स्वस्थ हो जाता है।

पशु अल्पभूमि एवं भूमिहीन किसानों की आजीविका और खानपान में महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं। इनके स्वास्थ्य का ध्यान रखा जाना चाहिए। स्वस्थ पशु ही किसान को लाभान्वित कर सकते हैं और उनके जीवन स्तर में सुधार कर सकते हैं।

— □ —

पशुओं में अपच : कारण, लक्षण एवं रोकथाम

राजेन्द्र यादव एवं रिक्की झांभ

पशु औषधि विज्ञान विभाग

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

एक पुरानी कहावत है कि मनुष्य में ज्यादातर रोगों की शुरूआत उसके पाचन तंत्र के खराब होने से होती है। यही बात पशुओं पर भी लागू होती है। पशुओं में पाचन क्रिया के बिगड़ने का मुख्य कारण अपच है। पशुओं की पाचन क्रिया के खराब होने का सीधा सम्बंध उनके उत्पादन मे कमी होने से है। जिसकी वजह से पशुपालकों को आर्थिक नुकसान भी उठाना पड़ता है। पशुओं में होने वाली अपच को मुख्य तौर पर तीन भागों में विभाजित करके देखा जा सकता है–

1. सामान्य अपच

- पशु द्वारा अपाचनशील, खराब, सड़ा हुआ या फफूंद लगा हुआ चारा खाना।
- पशुपालक द्वारा पशु आहार में अचानक परिवर्तन करना।
- पशु द्वारा अत्यधिक चारा खा जाना।
- पशु के लिए पीने के पानी की कमी होना।
- पशुपालक द्वारा पशु को संतुलित आहार नहीं देना।
- पीड़ित/बीमार पशुओं में अधिक मात्रा में या लम्बे समय तक एंटीबोयोटिक्स या सल्फा औषधियों के प्रयोग से भी पेट (रूमन) के जीवाणु नष्ट होने से अपच हो सकती है।

2. अम्लीय अपच

- अम्लीय अपच का मुख्य कारण पशु द्वारा अत्यधिक कार्बोहाइड्रेट युक्त आहार खाना है।
- पशु द्वारा दुर्घटनावश अत्यधिक मात्रा में गेहूं, जौ, मक्का, गन्ने की पत्तियां, आलु, चावल इत्यादि खा जाना।
- पशुओं को शादियों व पार्टियों में बचा हुआ भोजन (जैसे रोटी, पूरी, छोले आदि) खिलाना।

3. क्षारीय अपच

- क्षारीय अपच का मुख्य कारण पशु द्वारा अत्याधिक प्रोटीन युक्त आहार खाना है।
- पशु द्वारा किसी कारणवश अत्यधिक मात्रा में चना या अन्य दलहनी पदार्थ खाना।
- पशु द्वारा दुर्घटनावश जेर का खा जाना।

लक्षण

- पशु की भूख में कमी आना या पशु द्वारा चारा–पानी लेना बंद कर देना।
- पशु द्वारा जुगाली बंद कर देना।
- पशु का सुस्त एवं मानसिक अवसाद से ग्रस्त हो जाना।
- पशु को कब्ज या दस्त हो जाना।
- पशु को अफारा आ जाना, सांस की गति बढ़ जाना एवं पेट दर्द की समस्या भी हो सकती है।
- पशु के गोबर में बिना पचे हुए दाना/चारा आना।
- पशु के उत्पादन में कमी होना।

बचाव एवं रोकथाम

- पशुओं को उच्च गुणवत्ता वाला, साफ–सुथरा एवं संतुलित आहार खिलाएं।
- पशु आहार में अचानक परिवर्तन नहीं करें एवं आवश्यकता से ही अधिक चारा न खिलाएं।
- अधिक मात्रा में रसोई से बचा हुआ भोजन या अन्य पदार्थ पशुओं को ना खिलाएं।
- पशुओं को हमेशा साफ–सुथरा एवं भरपूर पानी पिलाएं।
- पशुओं में उपरोक्त कोई भी लक्षण दिखाई देने पर तुरंत पशु चिकित्सक से सम्पर्क करें।

— □ —

कटड़ों/बछड़ों के दस्त, उपचार एवं रोकथाम

श्रवण कुमार* एवं दिनेश दहमीवाल**

*पशु चिकित्सा विकृति विज्ञान विभाग, **पशु शल्य चिकित्सा एवं विकिरण विभाग
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

किसी भी फार्म की लाभ दर उसके पशु, श्रम एवं आहार प्रबन्धन पर निर्भर करती है। पशुओं में प्रबन्धन और उनसे संबन्धित रोगों के साथ, कई अन्य प्रकार के संक्रमण रोगों से भी बचा कर, पशुओं के विकास पर व प्रजनन शक्ति को बढ़ा कर, फार्म की लाभदर को कई गुणा बढ़ा देता है। किसी भी फार्म में विभिन्न आयु के पशुओं के बीच नए जन्में कटड़े/बछड़े एवं छोटे आयु के कटड़े/बछड़े में बीमारी व मृत्यु दर सबसे अधिक होती है क्योंकि इनमें रोग प्रतिरोधक क्षमता संपूर्ण रूप में विकसित नहीं होती है। कटड़ों/बछड़ों में बीमारियों से न केवल कटड़े/बछड़े की शारीरिक वृद्धि कम होती है बल्कि इसके साथ–साथ दुग्ध उत्पादन भी प्रभावित होता है। कटड़ों/बछड़ों में बीमारियाँ पशु चिकित्सा पर होने वाले खर्च को बढ़ा देता है बल्कि इसके साथ–साथ कई बार अच्छी नस्ल के कटड़े/बछड़े की मृत्यु के कारण आनुवांशिक चयन (Hereditary selection) भी कम हो जाता है। इसलिए कटड़ों व बछड़ों में होने वाली बीमारियों के कारण, उपचार व रोकथाम की उचित जानकारी रख कर अधिक से अधिक लाभ कमाया जा सकता है।

कटड़ों/बछड़ों का दस्त– कटड़ों/बछड़ों में दस्त मृत्यु का सबसे मुख्य कारण है। उचित जानकारी व प्रबन्धन से दस्त से होने वाली मृत्यु दर को कम किया जा सकता है। दस्त का अधिक प्रकोप 1 महीने से कम उम्र के कटड़ों/बछड़ों में ज्यादा होता है। दस्त के मुख्य लक्षण सफेद गोबर से शुरू होकर, खूनी दस्त और अंत में अर्धमृत अवस्था तक पहुँचना हो सकता है।

लक्षण

- पतला और सफेद रंग का दस्त
- शरीर मे पानी की कमी, आंख का सिकुड़ना,
- आंख का अन्दर धसना, त्वचा का सुखापन और मुलायमपन खो देना
- कई बार दस्त में खून आना
- भूख का न लगना
- बैठने/उठने में कठिनाई
- खड़े होने में असमर्थ/असंवेदनशील व अर्धमृत अवस्था।

कारण– कटड़ों/बछड़ों में दस्त का कारण विभिन्न कीटाणु, विषाणु या परजीवी हो सकता है।

कीटाणु– कीटाणुओं के संक्रमण में दस्त का कारण ई. कोलाई और सालमोनैला का संक्रमण हो सकता है। इसमें बीमारी तीव्र गति से बढ़ती है और बहुत जल्द दस्त कमजोरी और शरीर मे पानी की कमी कर देता है।

उपचार– इस बीमारी में कटड़ों/बछड़ों का 3 दिन तक Antibiotic Therapy के साथ Fluid Therapy (नस में ग्लूकोज लगवाना) और 10 ग्राम नेबलोन (10 Gram Neblon) पाउडर भी देना चाहिए।

विषाणु– Rota Virus मुख्यतः रूप से कटड़ों/बछड़ो में दस्त का कारण है। इससे रक्त के साथ–साथ आंत की कोशिकाएं व आंत के अंदर की परत (Mucous Membrane) के छोटे–2 टुकड़े भी गोबर में मिलते है। दस्त मुख्यतः सफेद रंग के होते है।

उपचार– इस बीमारी में कटड़ों/बछड़ों का 3 दिन तक Antibiotic Therapy लगवानी चाहिए। Antibiotic Therapy के साथ Fluid Therapy और 10 Gram Neblon पाउडर भी देना चाहिए।

परजीवी (पेट के कीड़े)– कटड़ों/बछड़ों में मुख्यतः Ascaris तथा Eimeria spp. दस्त के परजीवी कारण है। ये परजीवी भोजन पाचन तंत्र के अन्दर रह कर कटड़ों/बछड़ों के साथ भोजन प्रतिद्वंदी है। इसलिए ये उपयुक्त शारीरिक वृद्धि भी कम करतें हैं और इसके साथ–2 शरीर से पानी की कमी कर देतें हैं खूनी दस्त में खून की कमी भी करतें हैं।

Ascaris– मुख्यतः रूप से भैंस व गाय के कटड़ों या बछड़ों में मिलता है। कई बार दस्त के साथ–साथ 15–30 सें0 मी. लम्बे गोल बेलनाकार आकृति एवं रंग में मलाईदार सफेद या गुलाबी रंग के होते हैं। इन परजीवियों को आम भाषा में 'जूण' भी कहा जाता है।

लक्षण– दस्त लगना, दस्त के साथ–साथ 1–10 सें.मी. लंबे कीड़े दिखाई देना।

उपचार– Ascaris के लिए Piperazine @ 20 mg/kg, Albendazole @ 5 mg/kg तथा 21 दिन बाद दवाई दोबारा देनी चाहिए।

सावधानियां– अगर संक्रमण अधिक हो तो दवाई से पहले दस्त की दवाई देनी चाहिए ताकि दवाई देने के बाद मरे हुए कीड़े आंत मे रूकावट पैदा ना करें और आसानी से बाहर निकल आएं।

Ascaris के रोकथाम के लिए हमे कटड़ों/बछड़ों को कीड़े मारने की दवाई देनी चाहिए।

कटड़ों/बछड़ों में कीड़े मारने की दवाई देने की समय सारणी

15 दिन उम्र	30 दिन उम्र	45 दिन उम्र
Albendazole @ 5-10 mg/kg, Piperazine adipate (56.3% w/v) @ 3-6 ml per 10 kg b. wt.	Albendazole @ 5-10 mg/kg, Piperazine adipate (56.3% w/v) @ 3-6 ml per 10 kg b. wt.	Albendazole @ 5-10 mg/kg, Piperazine adipate (56.3% w/v) @ 3-6 ml per 10 kg b. wt.

इसके बाद एक साल की उम्र तक हर 3 महीनें में और 2 साल की उम्र तक हर 4 महीनें में पेट के कीड़ों की दवाई देनी चाहिए। व्यस्क पशु को साल में दो बार कीड़ों की दवाई देनी चाहिए।

कोकसिडियोसिस (Coccidiosis)– यह मुख्यतः Eimeria spp. से होने वाला रोग है। यह रोग मुख्यतः रूप से 1 सप्ताह से 4 महीनें की आयु तक होता है।

उपचार– एक बार बीमारी कटड़ों/बछड़ों में आ जाए तो इसका उपचार करना कठिन है। इसलिए इस रोग की रोकथाम करना आवश्यक है। इसका उपचार के लिए Amprolium and sulphamethazine @ 10 mg per kg-1 3.5 दिन देनी चाहिए। इसकी रोकथाम के लिए कटड़ों/बछड़ों को भोजन मे amprolium (corid@), Lasalocid (Buvittee@), decuqurinate (Deccox@) तथा Monensin (Rumensin@) @ 5 mg per kg और 35 mg per kg 15-20 दिन मिलाना चाहिए।

— □ —

कटड़ों में पेशाब का रूकना

संदीप सहारण एवं सतबीर शर्मा

शैक्षणिक पशु चिकित्सालय

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

सर्दियों में देखा गया है कि पेशाब का रूकना कटड़ों में बहुत बड़ी समस्या बनी हुई हैं। आमतौर पर यह समस्या कटड़ियों की अपेक्षा कटड़ों या बछड़ों में अधिक पाई जाती है। उसका सबसे बड़ा कारण इनका पेशाब के रास्ते की बनावट है। कटड़ियों की अपेक्षा इनका पेशाब का रास्ता लम्बा व घुमावदार होता है। दूसरा कारण सर्दियों में पानी का कम पीना तथा जमीन से अधिक मात्रा में खनिज पदार्थ चारे के द्वारा उनके शरीर में जमा हो जाता है, जिस से वों धीरे–धीरे पेशाब के रास्ते में जमा होने लगता है। आमतौर पर यह पत्थरी पेशाब नली के पिछले हिस्से में जमा होती रहती है।

लक्षण

- बूंद–बूंद कर पेशाब का आना
- पशु का पेशाब के लिए जोर लगाना जिसके कारण गुदा का बहार का जाना
- पेशाब की थैली फटने पर पेट मे पेशाब का जमा हो जाना जिस के कारण पेट का फूल जाना।
- अधिक दिनों तक पेशाब रूकने पर पशु अचेत अवस्था में लेट जाता है।

उपचार

अगर कटड़ा बूंद–बूंद कर पेशाब कर रहा है तो उसे नौसांदार लगभग 25 ग्रा. हर रोज गुण–गुणे पानी के साथ पिलाना चाहिए। साथ में सिसटोन की 5–5 गोलियाँ दिन मे दो बार खिलानी चाहिए। अगर फिर भी पेशाब खूल कर ना आए तो शल्य चिकित्सा द्वारा उसका ईलाज किया जाता है। चिकित्सा से पहले अल्ट्रासाउंड द्वारा पेशाब की थैली की जाँच कि जाती है तथा उसके बाद पता लगाया जाता है कि पेशाब के रास्ते में पत्थरी कहाँ पर है। अगर कटड़ों के पेशाब का रास्ता पूरा मिट्टी/पत्थरी से भरा गया हो तो उसका उपचार टयूब सिस्टोटोमी द्वारा किया जाता है, जिस में एक दो मुँह वाली नलकी उसकी पेशाब की थैली में फिक्स कर दी जाती है। जिस में एक नली से पेशाब निकलता रहता है। साथ में उसे एंटीबायटिक, एंटीइनफलैमेट्री तथा नौसांदर दिया जाता है। नौसांदर पत्थरी को या मिट्टी को धीरे–धीरे पिघला देता है जिससे कुछ समय बाद पशु के मूत्र द्वार से पेशाब आना शुरू हो जाता है। जिसके बाद नलकी निकाल दी जाती है।

अगर अल्ट्रासाउंड में पत्थरी दिखाई देती है तो यूरेथ्रोटोमी चिकित्सा विधि द्वारा पशु की पेशाब नली पर चीरा दे कर पत्थरी निकाल दी जाती है और पेशाब के रास्ते में नलकी डाल दी जाती है। सात दिनों तक दवाइयां देने के बाद नलकी निकाल दी जाती है।

बचाव के तरीके

आजकल पशुओं की कीमतों को देखते हुए लोग कटड़ों पर ध्यान देने लगे है। यह रोग ज्यादातर सर्दियों में देखा गया है। इसलिए पशुपालकों को चाहिए कि अपने पशुओं को गुनगुना पानी पिलाए तथा उनके चरने के स्थान पर सेंधा नमक की बट्टी रखें, जिससे पशु को अधिक प्यास लगें और वो ज्यादा से ज्यादा पानी पीए। सर्दियां शुरू होते ही हफ्ते में दो बार अपने कटड़ों को 25–30 ग्रा. नौसादर पिलाएं जिस से पत्थरी उनके रास्ते में जमा ना हो पाए व धीरे–धीरे पेशाब के रास्ते से निकलती रहें। पेशाब रूकते ही पशु को जल्दी से जल्दी पशु चिकित्सक के पास ले जाए।

— ▯ —

गाय भैंसों में सींग व पूंछ संबंधी मुख्य बीमारियाँ एवं उपचार

दिनेश दहमीवाल एवं मदनपाल

पशु शल्य चिकित्सा एवं विकिरण विभाग

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

सींग व पूँछ पशु के शरीर में सुंदरता की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण अंग हैं। भैंसों में खासतौर पर सींगों की सुंदरता उसकी कीमत को बढ़ाती है और उसकी नस्ल का बोध भी कराती है। यह दोंनों अंग विभिन्न प्रकार की चोटों और बीमारियों के लिए बहुत संवेदनशील हैं। सावधानी एवं समय पर उपचार द्वारा हम पशु की सुंदरता और कीमत को बनाए रख सकते हैं।

सींग की मुख्य बीमारियाँ एवं होने वाले घाव

1. **सींग का कैंसर**– यह बीमारी भारत समेत दुनिया के कुछ अन्य देशों जैसे – सुमात्रा, ईराक और ब्राजील में पाई जाती है। यह बीमारी भैंसों की अपेक्षा गाय व बैलों में अधिक पाई जाती है। इसमें सींग के अंदर कैंसर का माँस भर जाता है और सींग नरम पड़ जाता है। इसके बाद वह कमजोर हो कर नीचे की तरफ लटक जाता है। पशु अत्याधिक दर्द महसूस करता है और उस सींग की तरफ सिर झुका कर रखता है। अन्य लक्षणों में पशु का सिर हिलाना, सींग को दीवार या खूंटे से रगड़ना, नाक में से रक्त–मिश्रित द्रव्य आना आदि शामिल हैं। कई बार सींग टूट कर नीचे गिर जाता है। इसके बाद घाव बन जाता है और उस पर मक्खियाँ बैठने लगती है। अंत में सींग के स्थान पर सड़ा हुआ कैंसर का माँस बच जाता है जिसमें कीड़े पड़ जाते हैं।

उपचार

सर्वप्रथम सर्जरी द्वारा वह सींग व कैंसर का माँस जड़ से निकालवा देना चाहिए। इसके बाद घाव पर प्रतिदिन, बिटाडीन की पट्टी करके स्प्रे किया जाता है। कैंसर रोधी दवा Vincristine sulphate एवं Anthimaline के बताए अनुसार लगवाई जाती हैं।

सावधानियाँ

सींग के घाव पर दिन में 3–4 बार स्प्रे (Topicure) अवश्य करना चाहिए ताकि उसमें कीड़े न पड़े। कैंसर रोधी दवाईयों का पूरा कोर्स करवाना चाहिए। अन्यथा कैंसर का माँस फिर से बढ़ जाता है।

2. **सींग का खोल/पोली उतरना**

मुख्य कारण

(क) पशुओं की आपसी लड़ाई के दौरान।

(ख) सींग के पास खुजाने के लिए बेल में फंसना।

(ग) अन्य बीमारी के इलाज के दौरान कटघरे में सींग फँसने से।

उपचार

(क) खोल उतरने के बाद बहुत अधिक खून निकलता है और पशु को बहुत अधिक दर्द होती है। खून रोकने के लिए Tincture Benzion की पट्टी करनी चाहिए तथा उस पर स्प्रे Topicure करना चाहिए।

(ख) जब खून बंद हो जाए उसके बाद घाव भरने तक बीटाडीन से पट्टी करके स्प्रे करना चाहिए।

(ग) इस दौरान पशु को 3–5 दिन तक दर्द के टीके अवश्य दिए जाने चाहिए।

3. सींग का टूटना

कारण– कई बार सींग में चोट लगने से सींग बीच से टूट जाता है।

उपचार

(क) इस अवस्था में सर्जन को दिखाना चाहिए और संभव हो तो वह सींग जड़ से ही निकलवा देना चाहिए।

(ख) घाव की देखभाल सर्जन के बताए अनुसार ही करनी चाहिए और आवश्यक दवाइयाँ प्रतिदिन लगवानी चाहिए।

पूंछ से संबंधित मुख्य बीमारियाँ एवं घाव

1. लैदरी/पूंछ का सूखना/डेगनाला रोग/Tail Gangrene

यह रोग भैंसों में अधिक पाया जाता है।

कारण– यह रोग फंगस Fusarium और Aspergillus के कारण होता है। यह मुख्यतः धान की पराली में पाया जाता है। इसमें पूंछ के निचले हिस्से के साथ–साथ कानों का पिन्ना भी सूखने लगता है।

उपचार

(क) पशुओं को नमी वाला व फंगस लगा तूड़ा/पराली नहीं खिलानी चाहिए।

(ख) शुरूआत में दवाइयों से भी रोग ठीक हो जाता है। इसमें एक होमियोपैथिक दवाई Tailguard 20 बूंद रोटी पर प्रतिदिन पशु को खिलाई जाती है। इसके अलावा पशु को नहलाते समय उसकी पूंछ को अच्छी तरह रगड़ कर धोना और उस पर सरसों व तारपीन के तेल की मालिश करना भी काफी लाभदायक सिद्ध होता है।

(ग) पेंटासल्फेट मिश्रण ($FeSO_4$ 166 g+ $CuSO_4$ 24 g+ $ZnSo_4$ 75 g+ $CoSO_4$ 15 g+ $MgSO_4$ 100g) पहले दिन 60 ग्रा. व इसके बाद 30 ग्रा. अगले दस दिन तक पशु को गुड़/आटे में मिलाकर खिलाना।

(घ) एंटीबायोटिक इंजैक्शन – Terramycin L.A. - 50 ml भी काफी प्रभावी इलाज है।

(ड़) पूंछ पर Nitroglycerin 2% क्रीम की मालिश भी इस रोग में काफी लाभदायक है।

(च) कई बार दवाइयों से ईलाज संभव नहीं हो पाता, तब पूँछ का रोगग्रस्त हिस्सा सर्जन द्वारा कटवा देना चाहिए।

2. पूंछ में चोट लगना

कारण

कम जगह में अधिक पशु रखना, जिससे पशु एक दूसरे की पूँछ पर पैर रख देते हैं।

बाड़ के तार या कांटेदार झाड़ियों में पूंछ के उलझने से।

उपचार

- यदि चोट अधिक गहरी है और खून नहीं रूक रहा है तो पूंछ की जड़ में पट्टी बांध देनी चाहिए ताकि खून का बहना रूक सके।
- पूंछ के घाव का विशेष ध्यान रखना चाहिए क्योंकि यह निरंतर पशु के गोबर व पेशाब के संपर्क में रहता है। अतः प्रतिदिन घाव को साफ करके बीटाडीन, नियोस्पोरीन पाऊडर से पट्टी करके स्प्रे करना चाहिए।
- यदि घाव ठीक नहीं हो रहा है और घाव से नीचे की पूंछ ठंडी पड़ रही है तो उसे सर्जन द्वारा कटवा देना ही बेहतर इलाज है।

उचित प्रबंधन व देखरेख द्वारा हम पशु को सींग व पूंछ की विभिन्न बीमारियों व चोटों से बचा सकते है। पशुओं के बीच में उपयुक्त दूरी होनी चाहिए ताकि वे आपस में लड़ न सके और न ही एक दूसरे की पूंछ पर पैर रख सकें। घाव होने पर इसकी नियमित देखभाल करनी चाहिए और उसे गंदगी व मक्खियों से बचाना चाहिए। इससे घाव जल्दी भरता है और अनावश्यक परेशानी से पशु व पशुपालक दोनों बच जाते हैं।

— □ —

दुधारू पशुओं में खुर-संबंधी बीमारियाँ एवं उपचार

दिनेश दहमीवाल* एवं श्रवण कुमार**

*पशु शल्य चिकित्सा एवं विकिरण विभाग, **पशु चिकित्सा विकृति विज्ञान विभाग
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

पशुओं में लगड़ापन, थनैला और प्रजनन संबंधी बीमारियों के बाद, तीसरा सबसे बड़ा आर्थिक नुकसान का कारण है। इसमें ईलाज का खर्च, दूध का नुकसान और पशु प्रजनन में बाधा प्रमुख नुकसान हैं। पशुओं में लंगड़ापन के लिए ८० प्रतिशत खुर संबंधी समस्याएँ ही जिम्मेदार होती हैं। ये रोग मुख्यतः उन पशुओं में अधिक पाए जाते हैं, जिनके ठाण में नमी अधिक रहती है। आजकल अधिक दूध उत्पादन के कारण विदेशी नस्लों की लोकप्रियता किसानों के बीच काफी बढ़ रही है। ये पशु खुर-संबंधी बीमारियों के लिए अधिक संवेदनशील होते हैं। जो पशु जितना अधिक दूध देता है वह इन बीमारियों के लिए उतना ही ज्यादा संवेदनशील होता है। अतः हमें अपने फार्म या घर पर दूध का निरंतर एक समान उत्पादन बनाए रखने के लिए पोषण, टीकाकरण आदि के साथ-साथ, खुरों के स्वास्थ्य का भी ध्यान रखना चाहिए।

मुख्य कारण

1. पशुओं के ठाण और उनके चलने फिरने के स्थान पर गोबर, कीचड़ पानी का होना।
2. अत्यधिक दलिया/गेहूँ/अनाज खिलाना।
3. पशुओं को हमेशा पक्के स्थान में रखना।
4. ताजा ब्याए पशुओं में खुर व आसपास के जोड़ों का ढ़ीला पड़ना।
5. खुर में चोट लगना।
6. पशुओं का किसी अन्य बीमारी जैसे थनैला, बच्चादानी के रोग आदि से ग्रसित होना।
7. अत्याधिक बढ़े हुए खुर।
8. पशु में मुँह खुर की बीमारी का प्रकोप।
9. पशु में खनिज लवण व विटामिन की कमी।

उपचार व सावधानियां

सामान्यतया खुर की वृद्धि 5 mm प्रतिमाह की दर से होती है। अतः एक बार चोट से निकला हुआ खुर ठीक होने में ८-१० महीनें का समय ले लेता है। खुर के प्रति पशुपालक की थोड़ी सी सावधानी से लंबे इलाज का खर्चा व परिश्रम बचाया जा सकता है। अतः पशुओं में खुर की चोट व बीमारियों को गंभीरता से लिया जाना चाहिए।

खुर की बीमारियों का उपचार

1. सर्वप्रथम खुर में हुए रोग का कारण पता लगाना चाहिए। इसके लिए पशु के खुर को अच्छी तरह पानी से धोने के उपरांत खुर को दबा कर जांच करनी चाहिए।
2. पशु के खाने में अनाज की मात्रा, ब्याने का समय, ठाण (कच्चा या पक्का), पशु का किसी अन्य बीमारी से ग्रसित होना आदि के बारे में विस्तार से पूछना चाहिए।
3. अगर खुर में घाव बना हुआ हो तो उसे प्रतिदिन लाल दवाई के पानी से साफ कर उस पर बीटाडीन, नियोस्पोरीन पाऊडर, जिंक आक्साइड, आइडोफोर्म पेराफीन मिश्रण आदि लगाना चाहिए।
4. खुर के घाव पर कभी पट्टी नहीं बांधनी चाहिए। पट्टी गंदगी व नमी अवशोषित कर लेती है, इससे खुर नरम पड़ जाता है और जल्दी टूट जाता है।
5. कारण पता लगाने के बाद उपयुक्त कदम उठाए जाने चाहिए। जैसे-

(क) यदि रोग का कारण भोजन में अधिक अनाज का होना है तो इसकी मात्रा तुरंत कम कर देनी चाहिए। अनाज से उत्पन्न हुई अम्लीयता को कम करने के लिए मीठा सोडा 50 गाम/प्रतिदिन एक सप्ताह तक पशु को खिलाना चाहिए।

(ख) ब्यात के समय पशुओं के खुर कमजोर हो जाते हैं। इसलिए उनके ठाण में रेत, बुरादा या पुराने तूड़ें की 4–6 इंच मोटी परत बिछी होनी चाहिए।

(ग) थनैला, बच्चेदानी के रोग आदि का समय पर उपचार कराना चाहिए। इनके कीटाणुओं से उत्पन्न विष खुर में रोग उत्पन्न करता है।

6. खुर की वृद्धि और मजबूती के लिए कुछ विटामिन एवं लवणों की खास आवश्यकता होती है, जो इस प्रकार है–

(क) बायोटिन – 20 mg प्रतिदिन

(ख) कोपर (Cu) – 1 g प्रतिदिन

(ग) जिंक (Zn) – 3 mg प्रतिदिन

(घ) सल्फर ये आवश्यक तत्व है, जो दूध की मात्रा भी 500 ml - 1 Lt. तक बढ़ाते हैं।

7. नरम व गीले खुरों को मजबूती देने व सख्त बनाने के लिए 5 % Formalin या 5% $CuSO_4$ या 2-5 % $ZnSO_4$ के घोल में खुर को प्रतिदिन 5–7 मिनट डुबोया जाना चाहिए। ये घोल Footrot नामक बीमारी से भी पशु को बचाते है।

सावधानियाँ

1. अगर खुर में या उसके आस–पास कोई घाव है तो उसे फोर्मलिन, कॉपर सल्फेट या जिंक आक्साइड के घोल में नहीं डूबोना चाहिए। इससे घाव अधिक समय में भरता है।
2. हर साल जब पशु सूखा अवधि में चला जाता है उस समय उसके खुरों की जाँच अवश्य करनी चाहिए और बढ़े हुए खुरों को कटवाना चाहिए।
3. खुर की समस्याओं को कभी नजरअंदाज नहीं करना चाहिए। ये पशु को स्थाई तौर पर भी लंगड़ा बना सकती है और उसकी उपयोगिता खत्म कर सकती हैं।

— □ —

भेड़ चेचक-एक खतरनाक रोग

श्रीधर एवं अंकित कुमार

पशु औषधि विज्ञान विभाग

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

भेड़ चेचक (शीप पाक्स) भेड़ों (विशेषतः मेमनों) का गम्भीर छूत का रोग है जिसमें शरीर के ऊन रहित भागों में चेचक के दाने निकल आते है और अधिक संख्या में मेमनों की मृत्यु हो जाती है।

कारण

यह रोग एक प्रकार के विषाणु द्वारा उत्पन्न होता है। बकरियों में चेचक उत्पन्न करने वाला विषाणु (वायरस) भेड़ों में और भी अधिक तीव्र बीमारी पैदा करता है। हालांकि किसी भी आयु या प्रजाति की भेड़ों में रोग हो सकता है लेकिन मेरिनों प्रजाति के मेमनों में रोग अधिक देखा जाता है।

रोग का फैलाव

1. सीधे संपर्क द्वारा स्वस्थ और रोगी पशुओं के सीधे संपर्क से रोग फैल सकता है।
2. दूषित वायु द्वारा स्वस्थ पशुओं के विषाणु चोट या खरोंच युक्त त्वचा में सीधे प्रवेश कर सकता है।
3. त्वचा द्वारा इस रोग का विषाणु चोट या खरोंच युक्त त्वचा मे सीधा प्रवेश कर सकता है।
4. दूषित उपकरणों द्वारा– विषाणुओं द्वारा दूषित उपकरण स्वस्थ पशुओं में प्रयोग करने से रोग फैल सकता है।

लक्षण

विषाणु के त्वचा के माध्यम या किसी अन्य माध्यम से शरीर में प्रवेश करने के 2 से 14 दिनों के अंदर रोग के लक्षण प्रकट हो जाते हैं। इस रोग के लक्षण मेमनों तथा वयस्क भेड़ों में भिन्न होते हैं।

मेमनों में (हानिकारक प्रकार)

1. मेमने सुस्त पड़ जाते हैं और खाना पीना कम कर देते हैं।
2. अत्यधिक तेज बुखार चढ़ जाता है।
3. रोगी पशुओं की आँखें और नाक से पानी जैसा स्त्राव होता है।
4. रोगी मेमने रोग की इसी अवस्था में बिना चेचक के दाने निकले भी मर सकते हैं।
5. जो मेमने रोग की यह अवस्था पार कर जाते है उनके शरीर पर ऊनरहित भागों और मुंह, श्वसन तंत्र, पाचन तंत्र आदि की सतह पर दानें निकल आते हैं।
6. इस प्रकार के रोग में मृत्युदर 50 प्रतिशत तक हो सकती है।

वयस्क भेड़ों में (हानि रहित प्रकार)

वयस्क पशुओं में रोग अधिक तीव्र नहीं होता। केवल त्वचा पर दानें निकलते है जो कि अधिकतर पूंछ के नीचे होते हैं। मृत्युदर 5 प्रतिशत तक हो सकती है। कभी कभी मादा भेड़ों में स्तन पर दानें निकल आने तथा जीवाणु संक्रमण होने से अत्यन्त तीव्र थनैला हो जाता है।

निदान

रोग का निदान लक्षणों के आधार पर तथा प्रयोगशाला परीक्षणों के आधार पर किया जाता है।

उपचार– इस रोग का कोई विशेष उपचार नहीं है। अत्याधिक तीव्र रोग होने पर लक्षणाधारित उपचार किया जा सकता है।

बचाव व रोकथाम

1. रोगी पशुओं को स्वस्थ पशुओं से एकदम अलग रखना चाहिए।
2. रोगी पशुओं के प्रयोग में आने वाले उपकरणों और संपर्क में आने वाले मनुष्यों से स्वस्थ पशुओं को दूर रखना चाहिए।
3. स्वस्थ मेमनों को भेड़ चेचक का टीका 3 माह की आयु पर लगाना चाहिए। इससे एक साल तक रोग से बचाव हो सकता है। यह टीका हरियाणा टीका संस्थान हिसार में उपलब्ध है।

— □ —

उपचार के दौरान पशुओं को जमीन पर गिराने के तरीके

संदीप सहारण* एवं अंशुल लाठर**

*पशु शल्य चिकित्सा विभाग, **पशु सूक्ष्म जीवी विभाग
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

कई बार पशुओं को उपचार के लिए जमीन पर गिराना पड़ता है जैसे छोटे बच्चों में सीगों का हटाना, खुरों का काटना, बढ़िया करना तथा बड़े ओपरेशन करना, इत्यादि।

सावधानियाँ

1. पशु को गिराने से पहले उसे 12 घण्टे तक भूखा रखें। यह सावधानी विशेष तौर पर गाय, भैंस आदि बड़े पशुओं के लिए विशेष जरूरी है क्योकि उनका पेट बहुत बड़ा होता है, जो कि गलत तरीके से गिराने से फट सकता है।
2. पशुओं को शांत करने की दवाओं का इस्तेमाल करके पशुओं को गिराने की विधि को सरल बना सकते हैं।
3. पशुओं को गिराने का स्थान खुला मैदान, बालू मिट्टी से भरा हुआ या फिर भूसे का गड्डा बना होना चाहिए।
4. पशुओं के गिराने का स्थान ईंट, पत्थर व कीलों से मुक्त होना चाहिए।
5. गिराने के लिए सबसे पहले पशु के चारों पैरो पर पट्टी बाँधनी चाहिए ताकि पशु के पैर रस्से से ना छीलें।
6. जो औजार गिराने में उपयोग किए जाने हो पहले उनकी गुणवत्ता की जाँच करनी चाहिए।
7. गाय, भैंसों आदि बड़े पशुओं के लिए एक मीटर का घेरा काफी है जबकि छोटे पशुओं जैसे कटड़ों, बछड़ों व सुकरों के लिए इससे आधा घेरा भी उपयुक्त है।
8. गाय व भैसों को गिराने के लिए चार आदमी काफी है जबकि घोड़े को गिराने के लिए सात आदमियों की आवश्यकता होती है।
9. पशुओं को गिराने से पहले हर आदमी को उसका काम अच्छी तरह से समझा देना चाहिए।
10. गर्भवती गायों व भैसों को कभी नहीं गिराना चाहिए जब तक कि बहुत ज्यादा जरूरी ना हो।
11. पशुओं को अधिक समय तक गिरा कर नहीं रखना चाहिए, ऐसा करने पर उनमें अफारे की समस्या हो सकती है।

गाय व भैसों को गिराना

गाय व भैसों को गिराने के लिए एक नौ मीटर लम्बी रस्सी की जरूरत पड़ती है।

विधि

गाय को बैल व सांण्ड की अपेक्षा आसानी व सावधानी पूर्ण गिराया जा सकता है। सबसे अच्छी विधि, 'रौफ विधि' होती है।

1. एक नौ मीटर रस्सी के एक सीरे पर सरकनी गाँठ लगा दी जाती है, जिसे पशु के सीगों के चारों तरफ बाँध दिया जाता है। अगर पशु बिना सींगों का है तो एक ढीली रस्सी उसके गर्दन के चारों और बाँध दी जाती है।
2. उसके बाद रस्सी बाँध दी जाती है। छाती के बाहर से लपेट कर आधी अड़चन बनाए।
3. दूसरी आधी अड़चन लेवटी के आगे, पशु के पेट के चारों तरफ लगाए।
4. उसके बाद रस्सी को दो आदमियों द्वारा सीधी रेखा में खींचा जाता है जिस से पशु बैठने लगता है।
5. जो आदमी पशु के सिर को पकड़े होता है, वो पशु के सिर को कंधो की तरफ धक्का देता है जिस तरफ रस्सी आपस में एक दूसरे से मिली होती है।
6. जैसे ही पशु गिरता है, एक आदमी जल्दी से उसके सिर को पीछे की तरफ कर के दबा कर बैठ जाता है। जबकि दूसरा आदमी उसकी पूछँ को ऊपर की पिछली टाँग के नीचे से निकाल कर पकड़ कर बैठ जाता है। बाकी के दो लोग पशु की आगे की व पिछली टाँगों को इक्टठा बाँध देते हैं, जिससे कि पशु पूरी तरह काबू में आ जाए।

— □ —

पशु रोगों के निदान हेतु की जाने वाली जांचें

महावीर चौधरी* एवं ममता कुमारी**

*पशु अनुवांशिकी एवं प्रजनन विभाग, **पशु चिकित्सा विकृति विज्ञान विभाग
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

गोबर की जांच

पशु में अफारा, दस्त, कब्ज, खुजली, दूध में कमी, कमजोरी, कम खाना, ताव में न आना, मिट्टी खाना, मल के साथ खून आना, जबड़े के नीचे पानी भरना, अत्यधिक चिकनाई युक्त मल आना आदि लक्षण दिखने पर पशु के मल या गोबर की जांच करवानी चाहिए।

गोबर की जांच द्वारा कृमि रोगों का पता लगाया जा सकता है। गोबर में परजीवी के अंडे, लार्वा, उसीस्ट आदि देखकर परजीवी के प्रकार की जानकारी मिल जाती है जिससे उसके विरूद्ध प्रभावी दवा का अनुमान लगता है। चिरकालिक कमजोरी या लगातार दस्त में रेक्टल पिंच या गोबर के स्मीयर की स्टेनिंग द्वारा जोहनीज़ रोग का भी पता लगाया जा सकता है। फफूंद लगे चारे को खाने से होने वाले फफूंद जनित आन्त्र शोध का गोबर की लेक्टोफिनोल कॉटन ब्लू स्टेनिंग द्वारा पता लगाया जा सकता है।

नमूने लेते समय ध्यान में रखने के बिन्दु

- जहां तक संभव हो गोबर के नमूने सीधे पशु के रेक्ट्म से ही लें।
- नमूने ताजा एवं बाहरी तत्वों से मुक्त होने चाहिए।
- नमूने हवा तंग कंटेनर्स या पोलीथीन बेग्स में लेने चाहिए।
- यदि नमूने को प्रयोगशाला में भेजने में समय लगे तो उसे फ्रिज में रखना चाहिए या उसमें 10 प्रतिशत फोर्मल सेलाइन डालना चाहिए (4 भाग फोर्मल सेलाइन तथा एक भाग गोबर)। यदि गोबर की जांच कोक्सिडियोसिस या फेफड़ों के कीड़ों हेतु की जानी है तो नमूनों में फोर्मलीन नहीं मिलानी चाहिए।
- कोक्सिडियोसिस रोग की जांच हेतु गोबर के नमूने में 2.5 प्रतिशत पोटेशियम डाइक्रोमेंट मिलाया जा सकता है।
- नमूनों को सही तरीके से चिन्हित करना चाहिए, जिससे पता चल सके की उक्त नमूना किस पशु का है।

मूत्र की जांच

जब मूत्र के रंग, बनावट, मात्रा, आदि में असामान्य परिवर्तन हो। गुर्दे, मूत्राशय और जिगर से संबंन्धित रोग के लक्षण दिखाई दें। एसिडोसिस, एल्केलोसिस, डायबिटीज, किटोसिस आदि रोगों की संभावना हो सकती है। पशु की शल्य चिकित्सा करवाने से पहले या जब पशु ऐसी बीमारी से ग्रसित हो जिसका निदान नहीं हो पा रहा हो, इस प्रकार की सभी अवस्थाओं में मूत्र परीक्षण करवाना चाहिए।

नमूने लेते समय ध्यान में रखने के बिन्दु

- मूत्र के नमूनों को साफ ग्लास या प्लास्टिक वायल्स में पशु के मूत्र करते समय लेना चाहिए। मझधार का मूत्र इक्कट्ठा करना चाहिए।
- गुर्दे से संबंन्धित रोगों की जांच हेतु सुबह के समय का नमूना लेना चाहिए।
- डाईबीटिज की जांच के लिए खाने से पहले व खाने से दो घंटे बाद का नमूना लेना चाहिए।
- बेक्टीरियल कल्चर सेंसिटिविटी जांच के लिए मूत्र का नमूना मादाओं में केथेटर की सहायता से स्टेरलाइज्ड टेस्ट ट्यूब में एकत्रित किया जाना चाहिए एवं इसमें कोई प्रीजरवेटिव नहीं मिलाना चाहिए। इसे बर्फ पर भेजा जाता है।

- मूत्र नमूने की जांच जितना जल्दी संभव हो करवा लेनी चाहिए। देर होने से मूत्र की एलकेलिनिटी (छारता) तथा उसमें गठन तत्व बढ़ जाते हैं।
- मूत्र को सही स्थिति में रखने के लिए हम टोल्युईन या फोर्मलीन का इस्तेमाल कर सकते हैं। फोर्मलीन–एक आउंस (1 ounce = 28.35 ml) में एक बूंद टोल्युईन–नमूने की सतह को टोल्युईन से ढकना।

रक्त की जांच

बीमारी की स्थिति में इसमें परिवर्तन होना स्वाभाविक है क्योंकि रक्त प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से शरीर में होने वाली समस्त जैव रासायनिक एवं रोग प्रतिरोधात्मक प्रक्रियाओं में भाग लेता है। जब भी पशु को ज्वर, रक्त की कमी, जिगर, गुर्दे, हृदय से सम्बन्धित रोग हो, रक्त परजीवी रोग, हिमेंचूरिया (रक्त वाला), बार–बार अफारा आदि के लक्षण पाये जाएं, ऐसी बीमारी हो जिसका निदान नहीं हो पा रहा हो तो रक्त की जांच करवानी चाहिए।

- सामान्य जांच हेतु 2–3 मि.ली. रक्त पर्याप्त होता है। रक्त लेने से पूर्व पशु की नस को हाथ या अंगूठे के दबाव से या टोर्नीकेट की मदद से उभार कर उसे स्प्रिट या 95 प्रतिशत एल्कोहल से साफ करके लेना चाहिए। रक्त लेते ही वायल पर ढक्कन लगाकर, उसे हथेलियों के बीच गोल घूमकर रक्त को ई.डी.टी.ए में सही तरह मिलाना चाहिए। ढक्कन पर एड्हीसिव टेप लगाकर नंबर आदि लिखकर चिन्हित करें व एक कागज पर पशु एवं उसकी बीमारी आदि के संबंध में जानकारी भेजनी चाहिए। देरी की स्थिति में इसे फ्रिज में या बर्फ पर रखना चाहिए। रक्त के नमूने साफ, सूखी, ग्लास या प्लास्टिक वायल में लाने चाहिए।
- वायल में आवश्यकता अनुसार एंटीकोएगुलेंट (जमारोधी) रक्त लेने से पूर्व ही डाल लेना चाहिए। सामान्य एंटीकोएगुलेंट के रूप में ई.डी.टी.ए का उपयोग किया जाता है। इसे 1–2 ग्राम प्रति मि.ली. रक्त के हिसाब से मिलाया जाता है।
- यदि रक्त सिरींज की सहायता से एकत्रित किया जाए तो इसे वायल में डालने से पूर्व सिरींज पर से निडिल (सुई) हटा लेनी चाहिए।
- पशुओं की बीमारी के निदान हेतु पशुपालकों को समय पर जांच एवं रोग का उपचार करवाना चाहिए। पशु के गोबर, मूत्र या रक्त के नमूने भेजने से पहले उपरोक्त बिन्दुओं को ध्यान में रखना चाहिए, जिससे समय पर सही तरीके से जांच हो सके।

— □ —

पशु पालन - स्वास्थ्य एवं टीकाकरण की जानकारी

श्रवण कुमार* एवं अंशुल लाठर**

*पशु चिकित्सा विकृति विभाग, **पशु सूक्ष्म जीवी विज्ञान विभाग
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

कृषि एवं कृषि सम्बन्धित व्यवसाय जैसे पशुपालन, मुर्गी पालन, मत्स्य पालन और डेयरी व्यवसाय से ग्रामीणों को न सिर्फ रोजगार प्राप्त हुआ है बल्कि इस व्यवसाय से किसानों की सामाजिक एवं आर्थिक बढ़ोतरी भी हुई हैं। इस व्यवसाय से खाद्य क्षेत्र में दूध, मांस व अण्डे के रूप में भी अहम योगदान हैं। भारत में 15–20 प्रतिशत परिवार भूमिहीन हैं और 80 प्रतिशत परिवार अल्पभूधारक हैं, ऐसे में पशुपालन व्यवसाय ही इन ग्रामीणों के सामाजिक एवं आर्थिक विकास का विकल्प बन सकता है। राष्ट्रीय एवं राजकीय पशुपालन विभाग की विभिन्न योजनाएं जैसे कि निःशुल्क टीकाकरण व चिकित्सा सेवाएं भी इस रोजगार के प्रति प्रोत्साहित करती हैं। इस व्यवसाय से अधिक से अधिक लाभ कमाने के लिए किसानों को पशुओं एवं स्वास्थ्य, रोगों व टीकाकरण की जानकारी रखना अति आवश्यक है। बुखार, नाड़ी की गति एवं श्वास लेने की गति से स्वस्थ एवं रोगी पशु की पहचान की जा सकती है।

रोगी एवं स्वस्थ पशुओं की पहचान

गुण	*स्वस्थ पशु*	*रोगी पशु*
सामान्य	*चौकन्ना व जीवन्त*	*सुस्त*
व्यवहार	*सामान्य*	*अन्य पशुओं से अलग रहना और चारे के प्रति उदासीनता*
त्वचा की सामान्य स्थिति	*त्वचा की सामान्य चमक, मुलायमपन एवं रोएं अपनी साधारण स्थिति में*	*त्वचा का सुखापन (शरीर में पानी की कमी, दस्त, आंत की टी.बी.)*
श्वास	*साधारण*	*तेज श्वास (गल घोंटू)* *धीमा श्वास (निमोनिया)* *मुंह खोल कर सांस लेना* *अफारा, दिल में सुई/कील का चुभना*
बैठने या खड़े रहने की स्थिति	*सामान्य*	*पशु का अधिकतर समय खड़े रहना (पशु के पेट या दिल में कील का चुभना)* *पशु का अधिकतर समय बैठे रहना (मिल्क फीवर, खुरों के रोग)* *पशु के उठने बैठने में तकलीफ (घुटने की सोजन, गठिया बा)*
मजल (घुथुन)	*ठंडा या भीगा हुआ*	*सूखा एवं गर्म*
मुंह	*सामान्य पागुर साधारण*	*पागुर बन्द,* *लार की मात्रा ज्यादा (मुंह–खुर रोग, रैबीज)*
जीभ	*हल्का गुलाबी रंग सामान्य एवं फोड़ा रहित*	*जीभ का पीला या नीला पड़ना,* *जीभ पर फफोले निकलना (मुंह–खुर रोग)*
आंख	*चौकन्नी*	*कुछ पुरानी बीमारियों में आंखे धंसी हुई जैसे (दस्त, लम्बी बिमारी)* *आंखों से पानी गिरना (पेट में कीड़े होना)*
गोबर	*सामान्य*	*दस्त (आंत की टी .बी., अचानक पशु के चारे में बदलाव, अधिक अनाज खिलाना), कब्ज*
पेशाब	*सामान्य, हल्का पीला रंग*	*पेशाब में खून आना (चिचड़ी बुखार, ताजा ब्याए पशु में फास्फोरस की कमी),* *बार–बार पेशाब करना – संक्रमण, रैबीज,* *पेशाब का रूकना (पेशाब के रास्ते में पथरी का बनना)*
शरीर का तापमान	*सामान्य*	*शरीर का ठण्डा पड़ना (मिल्क फीवर),* *शरीर का गर्म होना (संक्रमण)*

पशुओं के सामान्य स्वास्थ्य की जानकारी

विभिन्न प्रकार के पशुओं में औसत तापमान, नाड़ी की गति, श्वास लेने की गति (प्रति मिनट) इस प्रकार है।

पशु की प्रजातियाँ	बुखार (फैरनाहाईट)	नाड़ी (प्रति मिनट)	श्वास (प्रति मिनट)
घोड़ा	100–101	32–44	8–16
गाय/भैंस	100–102	50–70	10–30
सुकर	102.5–103	60–80	8–18
भेड एवं बकरी	102–103	70–80	12–20
ऊँट	99–100	28–32	8–12
कुत्ता	101–102	70–120	10–30
बिल्ली	101–102	110–130	20–30

टीकाकरण की जानकारी

रोग	वैक्सीन	पशु प्रजाति व टीकाकरण			टीकाकरण की आयु	टीकाकरण का समय
		गाय/भैंस	भेड़/बकरी	सुकर		
संक्रामक गर्भपात या ब्रसोलोसिस	एस–19	बछड़ियों/कटड़ियों में 2 मि0 ली0 चमड़ी के नीचे	2 मि0 ली0 चमड़ी के नीचे	–	4 महीनें की आयु पर	साल के किसी भी महीने में
फड़किया	ई0 टी0 वैक्सीन		2.5 मि0 ली0 चमड़ी के नीचे 15 दिन लगाए	–		साल के किसी भी महीने में
मुंह–खुर रोग	एफ एम डी वैक्सीन	2 मि0 ली0 चमड़ी के नीचे	1मि0 ली0 चमड़ी के नीचे	1मि0 ली0 चमड़ी के नीचे	3 महीनें की आयु पर	साल में 2 बार मई महीनें में व दोबारा नंवबर में
गलघोंटू	एच एस वैक्सीन	5 मि0 ली0 चमड़ी के नीचे	2 मि0 ली0 चमड़ी के नीचे	–	पहला टीकाकरण 6 महीनें की आयु पर	साल में 2 बार मई–जून व अक्तूबर–नंवबर में
लंगड़ा बुखार	बी–क्यू वैक्सीन	5 मि0 ली0 चमड़ी के नीचे	2 मि0 ली0 चमड़ी के नीचे	–	–	वर्षा ऋतु से पहले जुलाई महीने में
पी0 पी0 आर	पी0 पी0 आर वैक्सीन	–	1 मि0 ली0 चमड़ी के नीचे	–	–	अगस्त महीनें में, रोग प्रतिरोध क्षमता 1–3 साल तक
माता रोग	सीप पोक्स वैक्सीन	–	0.5 मि0 ली0 चमड़ी के नीचे	–	3 महीनें की आयु पर	अक्तूबर–नंवबर में
सूकर ज्वर	स्वाईन फीवर वैक्सीन	–	–	1 मि0 ली0 चमड़ी के नीचे	3 महीनें की आयु पर	अक्तूबर में, रोग प्रतिरोध क्षमता 1 साल तक

पशुओं में रोगों की रोकथाम हेतु व्यवहारिक सुझाव

राजेन्द्र यादव एवं रिक्की झांभ

पशु औषधि विज्ञान विभाग

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

एक पुरानी कहावत है कि 'उपचार से उत्तम बचाव है'। पशुपालक इस कहावत को सत्य सिद्ध करते हुए अपने पशुओं में विभिन्न रोगों की रोकथाम के लिए वैज्ञानिक पद्धतियां अपनाकर पशुओं में होने वाले रोगों से बचाव कर सकते हैं या उनका प्रकोप काफी हद तक कम कर सकते हैं। निम्नलिखित कुछ वैज्ञानिक सुझाव हैं, जो कि पशुपालकों के अपनाने के लिए काफी व्यवहारिक हैं तथा जिनको पशुपालक काफी आसानी एवं सजगता से अपना सकते हैं :–

1. संक्रामक रोगों से बचाव हेतु टीकाकरण

पशुओं में होने वाले विभिन्न संक्रामक रोगों से पशुपालकों को भारी आर्थिक नुकसान उठाना पड़ता है, इसके साथ–साथ कई संक्रामक रोग मनुष्य के लिए भी हानिकारक सिद्ध हो सकते हैं। अतः समय से नियमित टीकाकरण द्वारा पशुओं को संक्रामक रोगों से मुक्त रखकर इस आर्थिक क्षति से बचा जा सकता है।

विभिन्न संक्रामक रोगों से बचाव के लिए रोग के संक्रमण के अनुसार विशेष आयु पर और निश्चित अंतराल पर पशु चिकित्सक की सलाह के अनुसार टीकाकरण करवाना चाहिए। टीकाकरण करने के कम से कम दो सप्ताह पूर्व पशुओं को आवश्यकतानुसार कृमिनाशक औषधि पशु–चिकित्सक की सलाह लेकर अवश्य देनी चाहिए। रोगी एवं दुर्बल पशुओं का टीकाकरण नहीं करवाना चाहिए।

टीकाकरण के दो सप्ताह बाद तक पशुओं को तनावमुक्त रखें एवं उपचार के लिए ऐंटीबायोटिक, (सल्फा औषधियाँ), कृमिनाशक और प्रतिरक्षा दमनक दवाओं के प्रयोग से बचना चाहिए। विभिन्न महत्त्वपूर्ण संक्रामक रोग जिनके लिए टीके उपलब्ध हैं– मुँह–खुरपका रोग, पी.पी. आर., रैबीज़, चेचक (माता रोग), सुकर ज्वर, गलघोंटू, एन्थ्रेक्स, ब्रुसेलोसिस, टेटनस, एंट्रोटॉक्सिमिया, लंगड़ा बुखर (बी.क्यू.) आदि।

2. आंतरिक परजीवी नियंत्रण

पशुओं के आंतरिक परजीवियों में गोलकृमि, फीताकृमि तथा चपटाकृमि मुख्य है, जो कि पशु के शरीर के भीतरी भागों मुख्यतः आहार नली/आँत/पेट में पाए जाते हैं। आंतरिक परजीवियों की वजह से पशु को दस्त लगना, बदहज़मी होना, पशु का कमजोर होना, पशु के उत्पादन, शारीरिक वृद्धि एवं काम करने की क्षमता में कमी होना, रोग प्रतिरोधक क्षमता में कमी आना, पशुओं में मिट्टी खाने की बीमारी (पाईका) होना तथा कई बार पशु की मृत्यु हो जाना जैसे दुष्प्रभाव हो सकते हैं।

आतंरिक परजीवियों का सही पता लगाने के लिए तथा उचित ईलाज करवाने के लिए पशु के मल/गोबर की जाँच भी करवाई जा सकती है। आंतरिक परजीवी नियन्त्रण हेतु समय–समय पर पशुओं की आयु, गर्भावस्था और प्रजाति को ध्यान में रखकर एवं पशु–चिकित्सक के परामर्श अनुसार कृमिनाशक औषधियों का प्रयोग करना चाहिए। आंतरिक परजीवियों में प्रतिरोध विकास रोकने के लिए पशु चिकित्सक की सलाह के अनुसार कृमिनाशक औषधि को बार–बार बदलना आवश्यक है।

बाँधकर पाले जाने वाले पशुओं में आंतरिक परजीवियों के प्रभाव को निंयत्रित करने के लिए स्वच्छता एवं स्वास्थ रक्षा के उपाय अपनाना बहुत ही आवश्यक है। चरने वाले पशुओं में आंतरिक परजीवियों के नियंत्रण हेतु चक्रीय चराई पद्यति (स्थान बदल करके चराई) को अपनाया जा सकता है। आंतरिक परजीवियों के नियंत्रण के लिए रोगवाहक वेक्टर/माध्यमिक धारकों/इंटरमीडिएट होस्ट (जैसे घोंघा व खून चूसने वाली मक्खियां व चिचड़ियां) का नियंत्रण भी अति महत्त्वपूर्ण है।

3. बाह्य परजीवी नियंत्रण

पशुओं के बाह्य परजीवियों में विभिन्न प्रकार की मक्खियां, चिचड़ियां, खाज–खारिश करने वाली बरूथियां तथा जुएं आदि आती हैं, जो कि पशु के शरीर के बाहरी भागों में रहती हैं तथा खून द्रव चूसती हैं। लगभग सभी पशु अपने जीवनकाल में कभी ना कभी इन बाह्य परजीवियों का शिकार होते हैं। बाह्य परजीवियों की वजह से पशु के शरीर में खून की कमी (एनीमिया), पशु का कमजोर होना, त्वचा पर खाज़–खुज़ली होना पशु के बाल/ऊन झड़ जाना, पशु का चिड़चिड़ा हो जाना, त्वचा पर घाव हो जाना, पशु के उत्पादन, शारीरिक वृद्धि एवं काम करने की क्षमता में कमी आना, रोग प्रतिरोधक क्षमता में कमी आना, पशुओं में मिट्टी खाने की बीमारी (पाईका) होना जैसे लक्षण देखने को मिलते हैं जिनकी वजह से पशुपालकों को काफी आर्थिक नुकसान उठाना पड़ता है।

इसके अलावा कुछ बाह्य परजीवी पशुओं में विभिन्न प्रकार की बीमारियां जैसे – थिइलेरियोसिस, बबेसियोसिस (चिचड़ी बुखार), अनाप्लाज्मोसिस, ट्रिपेनोसोमियसिस (सर्रा) तथा लकवा (टीक पैरालाईसिस) आदि रोग भी फैलाते हैं, जो कि काफी घातक रोग हैं एवं पशुओं के लिए जानलेवा साबित हो सकते हैं। पशुओं के बाह्य परजीवी नियंत्रण हेतु समय–समय पर पशुओं की आयु, गर्भावस्था और प्रजाति को ध्यान में रखते हुए पशु चिकित्सक के परामर्श अनुसार उचित मात्रा में एवं उचित तरीके से सावधानीपूर्वक कीटनाशक दवाई का प्रयोग करना चाहिए। कीटनाशक लगाने से पहले पशुओं को इच्छानुसार जल पिलाना चाहिए ताकि वे उपचार के बाद शरीर को न चाटें।

सामान्यतः सभी कीटनाशक औषधियां विषैली होती है, अतः इन्हें पशुओं एवं बच्चों की पहुँच से दूर व सुरक्षित स्थान पर रखना चाहिए। खराब मौसम में कीटनाशक का उपयोग नहीं करना चाहिए। पशुओं के शरीर पर कीटनाशक दवाई का प्रयोग करने के साथ–साथ इनका पशुशालाओं में भी छिड़काव अत्यंत आवश्यक है, अन्यथा पशुओं के बाह्य परजीवियों का पूरी तरह नियंत्रण नहीं हो पाता है।

4. दुधारू पशुओं में दूध सुखाने हेतु व्यवहारिक सुझाव

दुग्धोत्पादन चक्र में अगली ब्यांत में दुग्धोत्पादन को सकुशल बनाए रखने के लिए दूध सुखाई हुई गायों एवं भैसों के थनों को स्वस्थ रखना अति आवश्यक है। गायों और भैंसों की दूध सुखाने की उपयुक्त अवधि ब्याने से पहले 6 से 8 सप्ताह है। परंतु इस अवधि में प्रोटीन और ऊर्जा समृद्ध आहार खिलाना आवश्यक है। आठ सप्ताह से अधिक समय तक सुखाई गाभिन पशुओं में स्थूलता/मोटापा होने की संभावना रहती है। इससे दूध उत्पादन भी घटने की संभावना रहती है।

विसुखावन उपचार से पहले दुधारू पशुओं में दूध दुहनें का कार्य क्रमशः अनियमित और आंशिक करके लगभग एक सप्ताह में समाप्त करना चाहिए। पशुओं का दूध अचानक नहीं सुखाना चाहिए, इससे थनैला रोग होने की संभावना रहती है। विसुखी दुधारू मादाओं में दीर्घकालीक प्रभावी एंटीबायोटिक को थनों के रास्ते चढ़ाने की क्रिया को गाय विसुखावन उपचार कहते हैं। यह थनों के संक्रमण को रोकने में सहायक होता है, तथा दूध उत्पादन कायम रख करके आर्थिक हानि से बचाता है। 'गाय विसुखावन उपचार' के लिए ब्याने के 6–8 सप्ताह पूर्व विसुखी दुधारू मादाओं में पशु चिकित्सक के परामर्श अनुसार दीर्घकालिक प्रभावी एंटीबायोटिक दवा का थनों के रास्ते इस्तेमाल करें।

5. पशुओं के नवजात शिशुओं का संक्रामक रोगाणुओं से बचाव

नवजात पशु संक्रामक रोगाणुओं एवं वातावरण में पाए जाने वाले अवसरवादी जीवाणुओं के प्रति अधिक संवेदनशील होते हैं। इसका कारण उनका अविकसित प्रतिरक्षा तंत्र होता है। अतः इन पर ज्यादा ध्यान दें। दस्त/अतिसार, निमोनिया, सेप्टीसीमिया, एन्डोटोक्सिमिया, ओम्फैलोफलेबाइटिस (नाल का सूज जाना), ऑस्टियोमाइलाइटिस, मस्तिष्क ज्वर और संक्रामक आर्थ्राइटिस आदि पशुओं के नवजात पशुओं में पाए जाने वाले मुख्य संक्रामक रोग हैं।

नवजातों में प्रतिरक्षा तंत्र अविकसित होने के कारण जीवाणुघाती/एंटीबायोटिक औषधियों को संक्रमण के उपचार हेतु अधिक मात्रा में एवं कम अंतराल पर देने को प्राथमिकता दी जाती है। नवजात पशु में उपरोक्त रोगों के कोई भी लक्षण दिखाई देने पर तुरंत नजदीकी पशु–चिकित्सक से सम्पर्क करके जल्द से जल्द उचित एवं पूरा उपचार करवाना चाहिए। अन्यथा पशुपालकों को नुकसान उठाना पड़ सकता है।

6. पशुशाला का रखरखाव

पशुशाला का उचित प्रबन्धन, रख–रखाव एवं साफ–सफाई भी पशुओं को स्वस्थ एवं रोग–मुक्त रखनें, तनाव–मुक्त रखनें तथा स्वच्छ दूध उत्पादन करने के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। जिसका सीधा सम्बंध पशुपालकों को पशुओं से होने वाले आर्थिक लाभ–हानि से है। पशुपालकों को चाहिए कि वो पशुशाला का निर्माण एवं रख–रखाव वैज्ञानिक तरीके से करें तथा उनमें रखे जाने वाले पशुओं के लिए उनकी प्रजाति, लिंग, उम्र तथा गर्भावस्था के हिसाब से अलग–अलग व्यवस्था करें। पशुशाला में नये पशुओं को रखने से पहले धूमन करने से वातावरण रोगमुक्त होता है, तथा जीवाणुओं पर नियन्त्रण रहता है।

7. पशुओं का आहार प्रबंधन

किसी भी जीवित प्राणी के शरीर को स्वस्थ रखने के लिए संतुलित तथा पूरा आहार बहुत महत्त्वपूर्ण है। अगर पशु को वैज्ञानिक रूप से संतुलित तथा पूरा आहार मिलता है तो पशु के शरीर की रोग–प्रतिरोधक क्षमता बनी रहती है तथा बीमारी पनपने की संभावना बहुत कम होती है। अगर पशु को उसकी प्रजाति, लिंग, आयु एवं गर्भावस्था के हिसाब से संतुलित तथा पूरा आहार दिया जाता है, तो उसके शरीर की वृद्धि दर, प्रजनन क्षमता, पशु का उत्पादन तथा बीमारियों से लड़ने की प्रतिरोध क्षमता बनी रहती है जो कि फायदेमंद पशुपालन के लिए बहुत जरूरी है।

पशुपालकों को चाहिए कि वो समय–समय पर पशु–चिकित्सक की सलाह लेकर पशुओं को संतुलित पशु आहार जिसमें कि उचित मात्रा में हरा चारा, सुखा चारा तथा खल–बिनौला शामिल हो, देते रहना चाहिए। इसके साथ–साथ पशुओं को उनकी प्रजाति, आयु, प्रजनन, गर्भावस्था एवं उत्पादन के हिसाब से खनिज–मिश्रण भी अवश्य नियमित रूप से देना चाहिए।

उपरोक्त सावधानियों एवं सुझावों के अलावा अगर पशुपालकों को अपने पशुओं सम्बंधी किसी भी समस्या का सामना करना पड़ता है, तो तुरंत अपने नजदीकी पशु–चिकित्सक या लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार के वैज्ञानिकों से सलाह लेकर उनका समाधान करवा सकते हैं।

— □ —

पशुओं से मनुष्यों में फैलने वाले प्रमुख रोग एवं उनकी रोकथाम के उपाय

ओमप्रकाश महला* एवं वन्दना भनोट**

*पशु धन उत्पादन एवं प्रबन्धन, **सहायक पशु रोग अन्वेषण अधिकारी
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

कुछ संक्रमित रोग पशुओं से मनुष्यों में लग जाते हैं, उन्हें **'पशुजन्य रोग'** कहते हैं। मुख्यतः संक्रमित रोग ग्रसित पशु से सीधे सम्पर्क, ग्रसित पशु से सीधे सम्पर्क, प्रदुषित मांस खाने से, मलमूत्र के सम्पर्क से तथा संक्रमित पशु व दुग्ध उत्पादों के मनुष्यों द्वारा प्रयोग करने से लग सकते हैं। पशुओं से मनुष्यों में आने वाले प्रमुखरोग निम्नलिखित हैं।

1. विषाणु जनित बीमारियां जापानी बुखार, बर्ड फ्लू, रेबीज़ एवं एकथाइमा आदि।

(क) **जापानी बुखार–** इस बीमारी के विषाणु सूअरों के खून में पाये जाते हैं। मच्छरों द्वारा ग्रसित सूअर का खून चूसने के बाद जब मनुष्यों को काटते हैं तो इस रोग के विषाणु उनके खून में प्रवेश कर जाते हैं। मनुष्यों के जोड़ों में दर्द, तेज बुखार, सिर दर्द व खून में प्लेटलेट्स की कमी आदि इस रोग के लक्षण हैं। समय पर उपचार न मिलने पर यह प्राणघातक रोग है।

(ख) **बर्डफ्लू–** बर्डफ्लू रोग के विषाणु मुख्यतः मुर्गे व मुर्गियों में पाये जाते हैं। ग्रसित मुर्गे व मुर्गियों की चौंच द्वार से गाढ़ा पानी निकलता है तथा पक्षियों को सांस लेने में कठिनाई होती है। इस रोग के विषाणु हवा के माध्यम से पोल्ट्री फार्म में कार्य करने वाले आदमियों में नाक द्वार से प्रवेश कर फेफड़ों से संक्रमण करते हैं, जिससे उनको जोड़–दर्द, बुखार व सिर दर्द हो जाता है।

(ग) **रेबीज–** पागल कुत्ते के काटने से लार द्वारा इस बीमारी के विषाणु मनुष्य के शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। यह एक प्राणघातक रोग है। ग्रसित मनुष्य के गले की मांसपेशियों में पक्षाघात हो जाता है एवं पानी पीने पर गले में तेज दर्द होता है और मनुष्य की मौत भी हो जाती है।

(घ) **एकथाइमा–** यह रोग प्रायः भेड़ बकरी पालने वालों को संक्रमित पशु के मुँह व त्वचा आदि के छूने से हो जाता है। इस रोग के विषाणु भेड़–बकरियों में संक्रमण करते हैं जिससे उनकी त्वचा में खुजली होती है तथा फफोले पड़ जाते हैं।

2. जीवाणु जनित बीमारियाँ

(क) **टी.बी. या तपेदिक–** यह रोग सक्रामक व भयानक है। इस रोग से ग्रसित पशु दाना–चारा खाना कम कर देता है तथा पशु धीरे–धीरे कमजोर हो जाता है। पशु को थोड़ा–थोड़ा बुखार भी रहता है। टी.बी. से ग्रसित पशु का कच्चा दूध या कम उबला हुआ दूध व मांस प्रयोग करने पर रोग मनुष्यों में हो सकता है। इस रोग से ग्रसित मनुष्य को थोड़ा–थोड़ा बुखार रहता है। मनुष्य कमजोरी व सुस्ती महसूस करता है।

(ख) **प्लेग–** यह भी एक प्राणघात सक्रामक रोग है। यह रोग ग्रसित चूहों के पिस्सुओं द्वारा खून चूसने पर स्वस्थ चूहों में फैलता है। जब ग्रसित चूहे मरने लगते है तो संक्रमित पिस्सू मनुष्यों का खून चूसने लगते हैं तथा यह रोग मनुष्यों में फैल जाता है। इस रोग से ग्रसित मनुष्य को तेज बुखार तथा जोड़ों में दर्द हो जाता है। समय पर इस रोग का इलाज न होने पर मनुष्य की मृत्यु भी हो सकती है।

(ग) **ब्रुसलोसिस**– यह एक छूत का रोग है जो ब्रुसेला नामक जीवाणु से होता है। यह रोग प्रायः गाय, भैंस, भेड़, बकरियों तथा सुकरियों में होता है। ग्रसित पशुओं से मनुष्यों में इस रोग का संक्रमण पशु के गर्भाशय के संक्रमित स्त्राव, गर्भपात के कारण या संक्रमित जेर को हाथ से छूने से त्वचा के माध्यम से हो सकता है। मादा पशुओं में बार–बार गाभिन कराने पर भी गर्भ न ठहरना, गाभिन हो जाने के 6–7 महीनें के अन्तराल में गर्भपात होना तथा बांझपन आदि इस रोग के मुख्य लक्षण हैं। यह रोग मादा पशुओं में ग्रसित सांड से प्रजनन करवाने से भी पहुँच जाता है। मनुष्यों में इस रोग के संक्रमण होने पर मांसपेशी तथा जोड़ों में दर्द होने लगता है तथा जोड़ों में सूजन, रात को अधिक पसीना आना, कम या ज्यादा बुखार आदि इस रोग के लक्षण हैं।

पशु जनित रोगों से बचाव के मुख्य उपाय

1. बर्ड फ्लू वायरस से संक्रमित मुर्गे–मुर्गियों को जला देना चाहिए।
2. पशुघर को अच्छी तरह साफ रखना चाहिए।
3. गाय–भैंस का दूध अच्छी तरह उबाल कर पीना चाहिए।
4. जो व्यक्ति कुत्ते पालते हैं उनकों ''एन्टीरेबीज'' के टीके जरूर लगवाने चाहिए।
5. पशुओं को गन्दे कीचड़ वाले तालाबों का पानी नहीं पिलाना चाहिए।
6. रोगी पशुओं का इलाज समय पर करवाना चाहिए।
7. पशुओं का समय–समय पर बाह्य परजीवियों जैसे मच्छर, चीचड़ व पिस्सु आदि से बचाव करना चाहिए।
8. जिस पशु की तेज बुखार से मौत हुई हो और उसके मुँह, नाक, गुदा व योनिद्वार से खून बह रहा हो अगर सम्भव हो तो ऐसे मृत पशु को जला देना चाहिए। मृत पशु के आस पास का चारा–दाना तथा मलमूत्र भी जला देना चाहिए। जिस गाड़ी में मृत पशु ले जाया गया हो उसे संक्रमण रहित करना बहुत जरूरी है।
9. मादा पशुओं के गर्भपात होने पर उनके मलमूत्र व संक्रमित स्त्रावों से बचाव करना चाहिए। ऐसे पशुओं के आस पास के स्थानों का भी जीवाणु रहित करना अति आवश्यक है।

— □ —

पशु पालन में एंटीबायोटिक दवाओं का दुरूपयोग : समस्या व समाधान

सुधि रंजन गर्ग

विस्तार शिक्षा निदेशक

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

एंटीबायोटिक दवाओं का उपयोग मनुष्यों और पशुओं में जीवाणु संक्रमण के ईलाज के लिए किया जाता है। ये दवाईयाँ कीटाणुओं द्वारा संक्रमण में जादुई रूप से कार्य करती हैं व कीटाणुओं को नष्ट करती हैं। परन्तु जीवन रक्षक होते हुए भी, इन दवाइयों का एक दूसरा हानिकारक पहलू भी सामने आया है। एंटीबायोटिक दवाओं का अत्याधिक, अनियंत्रित व अनुचित प्रयोग मनुष्य और पशु दोनों के लिए एक बहुत बड़ा खतरा बन गया है। एंटीबायोटिक दवाइयों के दुरूपयोग के कारण, बहुत से जीवाणु इन दवाओं का प्रतिरोध करने में सक्षम हो जाते हैं जिससे इन दवाओं का प्रभाव समाप्त या कम हो जाता है। इस कारण बहुत बार संक्रमण लाईलाज हो जाता है। ऐसी प्रतिरोधी क्षमता वाले जीवाणु वातावरण में फैल कर पशुओं व मनुष्यों में जान लेवा संक्रामक रोगों का कारण बनते जा रहे हैं।

इस समस्या ने आज संसार में एक गम्भीर रूप ले लिया है। सच्चाई यह है कि संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे विकसित देश में भी हर साल कम से कम बीस लाख लोग एंटीबायोटिक प्रतिरोधी जीवाणुओं से संक्रमित हो जाते हैं और 23,000 के करीब संक्रमित होकर मृत्यु को प्राप्त होते हैं। यूरोपीय संघ में इनसे होने वाली सालाना मानव मृत्यु दर लगभग 25,000 है। विकासशील देशों में तो स्थिति इससे भी बहुत खराब ही होगी।

पशु पालन में एंटीबायोटिक का उपयोग

पशुपालन में एंटीबायोटिक दवाओं का प्रयोग निम्नलिखित उद्देश्यों के लिए किया जाता है।

1. **चिकित्सीय उपयोग–** एंटीबायोटिक दवाओं का उपयोग मुख्य रूप से संक्रमित बीमार पशुओं के उपचार के लिए किया जाता हैं। उस स्थिति में आमतौर पर इन दवाओं की दी जाने वाली मात्रा अधिक होती है। इसके विपरीत जब इन दवाओं का उपयोग अन्य कारणों जैसे कि रोगों से बचाव या रोगों की रोकथाम अथवा पशुपालन में पशुओं के शारीरिक विकास को बढ़ाने के लिए किया जाता है, तब इन दवाओं की खुराक कम रखी जाती है।

2. **संक्रमण से बचाव व संक्रमण के प्रसार की रोकथाम के लिए–** एंटीबायोटिक दवाओं का प्रयोग संक्रमण से बचाव के लिए भी किया जाता है। जब पशुओं के समूह में संक्रमण का प्रवेश हो जाता है तब पशुओं को संक्रमित होने से बचाने के लिए तथा संक्रमित पशुओं से स्वस्थ पशुओं में रोग प्रसार को रोकने के लिए इन दवाओं का प्रयोग किया जाता है। ऐसी स्थिति में बीमार पशुओं को अलग करके उनका उपचार किया जाता है जबकि स्वस्थ पशुओं को अलग करके उन्हें रोग से बचाव के लिए एंटीबायोटिक दवा की खुराक दी जाती है।

3. **पशु उत्पाद या विकास को बढ़ाने के लिए–** पशु पक्षियों के दाना–पानी में भी एंटीबायोटिक दवाओं का मिश्रण किया जाता है ताकि पशुओं के शारीरिक विकास व उत्पादन में बढ़ोतरी हो तथा अधिक लाभ प्राप्त किया जा सके। इसके लिए दवाओं का उपयोग कम मात्रा में परन्तु लम्बी अवधि के लिए किया जाता है।

मनुष्यों और पशुओं में जीवाणु संक्रमण के ईलाज व रोकथाम के लिए विभिन्न प्रकार की एंटीबायोटिक दवाओं का उपयोग संसार भर में बड़े पैमाने पर किया जाता है। प्रमुख रोगाणु रोधी

दवाओं के नाम इस प्रकार हैं– बीटा–लेक्टम एंटीबायोटिक्स, पेनिसिलीन जी, अमोक्सिसिलिन, एम्पीसिलीन, सिफैलोस्पोरिन, जैन्टामायसिन, नियोमायसिन, स्ट्रेप्टोमायसिन, टेट्रासायकिलन, सिपरोफलोक्सासिन, क्लिन्डामायसिन, एरिथ्रोमायसिन, टिल्मीकोसिन, टाइलोसिन, सल्फोनामाइड, फलेवोमायसिन, मोनेन्सिन इत्यादि। इनमें से अधिकतर का उपयोग पशुओं तथा मनुष्यों दोनों में होता है। कुछ दवाओं का इस्तेमाल केवल मनुष्यों में किया जाता है क्योंकि ये पशुओं में उपयोग के लिए अनुचित हैं और कुछ बहुत मंहगी भी है। कुछ दवाओं का उपयोग केवल पशुओं में रोगों की रोकथाम और उनके विकास को बढ़ावा देने के लिए ही किया जाता है।

सही दवा का चुनाव, उसकी खुराक की मात्रा तथा देने की विधि इस बात पर निर्भर करती है कि दवा किस कारण या किस रोग के लिए दी जा रही है। पशु चिकित्सक उपचार करते समय कई बातों का ध्यान रखते हैं जैसे कि संक्रमण का कारण, कीटाणु का प्रकार व विशेषताएँ, दवा की जीवाणु को मारने की क्षमता, दवा देने की विधि की सुगमता, पशु की दवा के प्रति सहनशक्ति, दवा के दुष्प्रभाव आदि। इन दवाओं को पानी या चारे के साथ या टीके के द्वारा चिकित्सीय सलाह पर दिया जाता है। परन्तु इन दवाओं के दुरूपयोग के बहुत दुष्परिणाम होते हैं।

शारीरिक विकास वर्धन के लिए एंटीबायोटिक दवाओं का उपयोग

बढ़ती जनसंख्या के कारण पशु–जनित खाद्य पदार्थों की माँग लगातार बढ़ रही है। अधिक उत्पादन के लिए पशुओं में रोगों से बचाव व उनकी रोकथाम अत्यावश्यक है, इसलिए एंटीबायोटिक दवाओं का उपयोग आवश्यक हो जाता है। इसके साथ–साथ कई जीवाणुरोधी पदार्थों का प्रयोग पशुओं के आहार या पानी में किया जाता है ताकि पशु उत्पादन बढ़े। पशुपालन तथा मुर्गी पालन में इस्तेमाल होने वाली ऐसी कई दवाईयाँ हैं जैसे कि क्लोरटेट्रासायक्लिन, आक्सीटैट्रासायक्लिन, पैन्सिलिन, टायलोसिन, बेसिट्रेसिन, नियोमायसिन, स्ट्रेप्टोमायसिन, एरिथ्रोमायसिन, लिन्कोमायसिन, बैम्बरमायसिन, वर्जिनामायसिन, ओलिएन्डोमायसिन इत्यादि। इनके इलावा कई अन्य जीवाणुरोधी रासायनिक पदार्थों का भी उपयोग किया जाता है।

जन स्वास्थ्य को खतरा

जिस प्रकार से मनुष्य रोगों के जीवाणुओं को नष्ट करने के लिए नई नई दवाओं का आविष्कार करता है, उसी प्रकार जीवाणु भी अपने बचाव में लगे रहते हैं। इसी कारण उनमे दवाओं का प्रतिरोध करने की क्षमता का विकास होता है। परन्तु एंटीबायोटिक दवाओं के अनुचित व अंधा–धुंध प्रयोग से उनकी यह क्षमता बहुत तेजी से बढ़ती है तथा ऐसे जीवाणु वातावरण में फैल जाते हैं जिन्हें आम दवाओं से नष्ट करना मुश्किल हो जाता है।

पशु चिकित्सकों व पशुपालकों को एंटीबायोटिक दवाओं के उपयोग में गंभीरता से विचार करना चाहिए क्योंकि उपचार के दौरान या उपचार के बाद ये दवाएं पशु के दूध या माँस उत्पाद में भी आ सकती है जो कि मनुष्यों के लिए हानिकारक है। एंटीबायोटिक प्रतिरोधी क्षमता वाले कीटाणु अपनी इस क्षमता का प्रसार दूसरे कीटाणु में भी कर सकते हैं जिसके बहुत गम्भीर परिणाम हो सकते हैं। ऐसे कई रोग जिनका उपचार पहले आसानी से सम्भव था, इस प्रकार लाईलाज हो जाते हैं।

प्रयोग में सावधानियाँ

एंटीबायोटिक दवाओं का उपयोग उचित विधिनुसार तथा चिकित्सक की सलाह के अनुसार सोच समझ कर करना चाहिए। इन दवाओं के उपयोग में लापरवाही मनुष्य और पशुओं दोनों के लिए ही मौत का कारण बन सकती है। रोगाणुरोधी दवाओं का अनुचित प्रयोग जैसे कि – अधिक या कम खुराक, अनियंत्रित उपयोग, नकली व घटिया गुणवत्ता वाली दवाओं का उपयोग अत्याधिक नुकसान पहुँचाता है तथा जानलेवा बीमारियों का उद्‌भव और विकास कर सकता है।

सुरक्षा और समाधान

इस विकट समस्या का मुख्य समाधान तो एंटीबायोटिक दवाओं व अन्य जीवाणुरोधी रसायनों के अंधाधुंध प्रयोग पर नियंत्रण ही है। इसके अतिरिक्त अन्य उपयोगी उपाय निम्नलिखित हैंः–

1. रोगाणुरोधी दवाओं की बिक्री पर नियन्त्रण रखा जाए तथा दवाएं केवल चिकित्सक के द्वारा लिखे जाने पर ही दी जाएँ।
2. पशुओं के लिए दवा लिखने का अधिकार केवल पशु चिकित्सकों को दिया जाना चाहिए।
3. दवा विक्रेता के पास दवाओं का लाइसेंस और मान्यता होनी चाहिए।
4. चिकित्सा के लिए दिशा निर्देश बनाए जाएँ।
5. अत्याधिक गंभीर समस्या उत्पन्न करने वाली एंटीबायोटिक दवाओं पर विशेष नियन्त्रण किया जाना चाहिए।
6. पशु चिकित्सकों और इससे संबंधित अन्य को आवश्यकता से अधिक दवाओं के लिखने पर नियन्त्रण किया जाना चाहिए।
7. पशुपालकों को एंटीबायोटिक दवाओं के अंधाधुध उपयोग से नुकसान के प्रति जागरूक किया जाना चाहिए।
8. जब भी आवश्यकता पड़े, विशेष हानिकारक दवाओं पर प्रतिबंध लगाकर इनसे बचाव किया जाए।
9. पशुपालकों को सफाई व वातावरण की स्वच्छता बना कर रोगों के प्रसार को रोकना चाहिए, न कि अनावश्यक दवाओं के द्वारा।
10. दवाओं की कीमत में वृद्धि भी दवाओं के अनावश्यक प्रयोग को कम करने में सहायक हो सकती है।

— □ —

पशुओं में मुख्य चयापचयी एवं अल्पता रोग

राजेन्द्र यादव एवं प्रवीण गोयल

पशु औषधि विज्ञान विभाग

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

पशुओं में मुख्य चयापचयी एवं अल्पता रोग इस प्रकार हैं–

1. कैल्शियम अल्पता (मिल्क फीवर / दुग्ध ज्वर)

यह रोग पशु के शरीर में कैल्शियम तत्व की कमी से उत्पन्न होता है तथा सामान्य रूप से मांसपेशियों की कमजोरी, मानसिक अवसाद एवं दूध उत्पादन की कमी के रूप में परिलक्षित होता है। यह रोग अधिक दूध देने वाले पशुओं में ज्यादा पाया जाता है। जनन के 72 घण्टों के अन्दर या जनन के बिल्कुल पहले यह रोग ज्यादा देखा गया है, परंतु कभी–कभी ब्यांत के 3 से 8 हफ्तों के दौरान भी यह रोग होता है। रोग की प्रारम्भिक अवस्था (उत्तेजना अवस्था) में प्रभावित पशु में उत्तेजना, भूख की कमी, अतिसंवेदनशीलता तथा मांसपेशियों की हलचल, सिर का बार–बार झटकना, जीभ का बाहर निकालना, लंगड़ापन, पिछले पैरों का तनाव तथा दांत किटकिटाना आदि लक्षण पाए जाते हैं।

रोग की दूसरी अवस्था (अर्द्धासन अवस्था या बैठ जाने की अवस्था) में पशु उदासीन दिखाई देता है तथा खड़ा होने में असमर्थता, थूथन का सुख जाना, शारीरिक ताप सामान्य से गिर जाना एवं शरीर का ठण्डा पड़ जाना, प्रभावित पशु द्वारा अपनी गर्दन मोड़ कर अपनी कॉंख पर रखना इत्यादि लक्षण देखने को मिलते हैं। इस रोग की तीसरी अवस्था (धराशायी अवस्था) में पशु बैठ भी नहीं पाता है एवं जमीन पर लेट जाता है, तथा उपरोक्त लक्षण और अधिक गहरा जाते हैं। पशु की हृदय गति कम तथा दुर्बल हो जाती है, रूमन (पेट) की गति रूक जाती है। प्रभावित पशु में गुदा की शिशिलता तथा आंख की पुतलियों का फैल जाना भी देखा जा सकता है। इस रोग के उपचार के लिए प्रभावित पशु को रक्त मार्ग से कैल्शियम चिकित्सा देने से तत्काल लाभ मिलता है।

2. फास्फोरस अल्पता (पोस्ट पार्चुरियेन्ट हिमोग्लोबिन्यूरिया)

यह एक फास्फोरस तत्व की कमी से होने वाला रोग है जो प्रभावित पशुओं में लाल रक्त कोशिकाओं के नष्ट होने तथा रक्ताल्पता के रूप में परिलक्षित होता है। यह रोग 3 से 6 ब्यांत की अवधि के दौरान तथा अधिक दूध देने वाले पशुओं में ज्यादा पाया जाता है तथा ब्याने के 2 से 4 सप्ताह के बाद यह रोग अधिक देखा गया है। गायों की बजाय भैंसों में यह रोग अधिक पाया जाता है। भूख की कमी, कमजोरी, दूध उत्पादन में कमी, पशु के शरीर में रक्त की कमी एवं श्लेष्मिक झिल्लियों का पीलापन, पशु के शरीर में जल की कमी के कारण गोबर का सूखा एवं कठोर होना, पीलिया तथा हृदय की गति बढ़ जाना इस रोग में पाये जाने वाले मुख्य लक्षण है। प्रभावित पशु में रक्त की कमी (एनीमिया) तथा भूख की कमी के कारण कुछ ही दिनों में पशु मर भी सकता है। उपचार के लिए प्रभावित पशु को फास्फोरस उपलब्ध कराने के लिए सोडियम ऐसिड फास्फेट रक्त मार्ग (नस से) तथा त्वचा के नीचे दिया जा सकता हैं, भोजन के साथ हड्डियों का चूरा या डाइकैल्शियम फास्फेट भी लाभकारी होता है। रक्त बढ़ाने के लिए कॉपर, लोहा तथा कोबाल्ट सम्मिश्रित टॉनिक लाभकारी होते हैं। रोग की रोकथाम के लिए ऐसे क्षेत्र जहां की मिट्टी में फास्फोरस की कमी हो में पशुओं को पूरक आहार के रूप में खनिज मिश्रण संतुलित आहार के साथ नियमित रूप से देना चाहिए।

3. कीटोसिस (कीटोनमियता)

इस रोग का कारण पशु के शरीर में दोषपूर्ण ग्लुकोज का चयापचय है, जिसकी वजह से पशु के रक्त में कीटोन प्रकृति के तत्वों की अधिकता हो जाती है एवं मूत्र, दूध एवं सांस में कीटोन तत्वों का उत्सर्जन बढ़ जाता है। यह रोग पशुओं में उनके अधिक दूध उत्पादन की अवस्था में अधिक पाया जाता है। भेड़ एवं बकरियों में यह रोग गर्भावस्था में पाया जाता है, इसलिए इन पशुओं में इसे गर्भावस्था विषाक्ता के नाम से जाना जाता है। भली भांति पोषित पशुओं में अधिक प्रोटीन आहार, प्रारम्भिक दुग्धावस्था में अल्प उर्जा पूरित आहार, अपर्याप्त श्रम एवं आहार में कोबाल्ट की अल्पता का सम्बंध भी इस रोग से है।

पशु की मांसपेशियों में हलचल तथा अकड़न भी देखने को मिल सकती है। भेड़ एवं बकरियों में यह रोग गर्भावस्था के दौरान मानसिक रोग के रूप में प्रकट होता है तथा प्रभावित पशुओं में चलने की विवशता देखी जाती है। प्रभावित पशु अपने सिर को किसी अजीवित वस्तु के विरूद्ध टकराते है। यह रोग क्षयकारी एवं मानसिक बीमारी के रूप में पाया जाता है। प्रभावित पशुओं में धीरे–धीरे भूख की कमी (पशु दाना/चाट खाना कम या बंद कर देता है परन्तु सुखा चारा खाता रहता है) एवं दूध उत्पादन की कमी के रूप में प्रकट होता है। पशु का शारीरिक वजन तथा चमड़ी के नीचे की वसा कम हो जाती है एवं पशु धीरे–धीरे कमज़ोर होने लगता है। पशु के दूध, मूत्र एवं सांस से कीटोनिक (मीठी) गन्ध आने लगती है। मानसिक रोग की स्थिति में पशु में जबड़ों की भ्रामक गतिशीलता, अत्याधिक लार, अतिसंवेदनशीलता, अन्धापन, लड़खड़ाहट, असामान्य चाल तथा घोड़े की तरह लात मारना देखा गया हैं। इस रोग की चिकित्सा के लिए 20 से 25 या 50 प्रतिशत ग्लुकोज पशु की रक्त वाहिनी में लगाया जाता है। इस रोग के उपचार के लिए प्रोपाईलिन ग्लाईकोल, ग्लिसरिन, सोडियम प्रोपियोनेट, ऐड्रिनोकोर्टिक्वाइड, ग्लुकोकोर्टिक्वाइड या इंसुलिन का प्रयोग भी लाभकारी सिद्ध होता है। पशु आहार में कोबाल्ट, फास्फोरस एवं आायोडीन की उचित मात्रा, संतुलित पशु आहार एवं व्यायाम से इस रोग को होने से रोका जा सकता है।

4. मैग्नीशियम अल्पता/लैक्टेशन टेटेनी/ग्रास टेटेनी

यह रोग शरीर में मैग्नीशियम तत्व की कमी के कारण होता है। चुंकि पशुओं के दूध एवं हरी घास में मैग्नीशियम का स्तर काफी कम होता है इसलिए नवजात कटड़े–कटड़ियों में यह रोग ज्यादा देखा गया है। रोगी पशुओं में उत्तेजना, मांसपेशियों में अकड़न, चिल्लाना, लड़खड़ाना, लार गिरना, शरीर का ताप बढ़ जाना एवं अन्त में गिर जाना आदि लक्षण पाये जाते हैं। नवजात पशुओं में इस रोग का अगर जल्द से जल्द इलाज नहीं किया जाता है, तो पशु की मृत्यु भी हो सकती है। उपचार के लिए 10 प्रतिशत मैग्नीशियम सल्फेट का घोल 100 मि.ली. इन्जेक्शन द्वारा दिया जाता है। बड़े पशुओं में 500 मि.ली. 5 प्रतिशत मैग्नीशियम सल्फेट का घोल आधा त्वचा के नीचे और आधा रक्त वाहिनी में इन्जेकशन द्वारा दिया जाता है। रोगी पशु को बाद में 50–100 ग्राम मैग्नीशियम सल्फेट 12–15 दिनों तक भोजन में भी खिलाया जाता है।

5. रिकेट्स

वृद्धिशील, अल्पायु पशुओं में कैल्शियम एवं फास्फोरस के चयापचय का दोषपूर्ण होना या विटामिन–डी एवं कैल्शियम की कमी इस रोग को जन्म देते हैं। प्रभावित पशु की वृद्धि रूक जाना, पैर कमानाकार (टेढा–मेढा हो जाना), जोड़ों का आकार बढ़ जाना, हड्डियों का आकार छोटा हो जाना, जोड़ों का सख्त हो जाना, लंगड़ाकर चलना, पशु के दांतो में विकार उत्पन्न होना एवं मिट्टी खाने की प्रवृति बढ़ जाना आदि लक्षण देखे जा सकते है। इस रोग

के उपचार के लिए विटामिन–ए, डी–3, कैल्शियम बोरोग्लुकोनेट, मैग्नीशियम और फास्फोरस देने से लाभ मिलता है। वृद्धिशील पशुओं में विटामिन–डी, मछली का तेल, हड्डियों का चूरा, डाइकैल्शियम फॉस्फेट, प्रोटीन, कैल्शियम एवं फास्फोरस–युक्त आहार का प्रयोग इस रोग की रोकथाम के लिए लाभकारी सिद्ध होता है।

6. अस्थिमृदुता (ऑस्टियोमलेशिया)

यह एक वयस्क दुधारू पशुओं में पाया जाने वाला कंकाल सम्बधित रोग है जो कि पशु के शरीर में कैल्शियम, फास्फोरस एवं विटामिन–बी की कमी से हो सकता है। आहार दोष विशेष रूप से खनिज लवणों से युक्त आहार का पूरित न होना, आहार में गेहूँ, चोकर या दाल–चूरी की अधिकता एवं शहरी वातावरण में रखी गई दूधारू गाय एवं भैंस में यह रोग अधिक प्रचलित है। दुधारू पशु में दूध उत्पादन कम हो जाना, प्रजनन क्षमता कम हो जाना, भूख की कमी, पैरों की मांसपेशियों में कठोरता, असन्तुलित चाल, जोड़ो में दर्द, धनुषाकार कमर, पशु को उठने–बैठने में दिक्कत होना एवं चलते समय लंगड़ाने के साथ जोड़ों से आवाज आना इस रोग में पाये जाने वाले मुख्य लक्षण हैं। पिछले पैरों में लंगड़ापन इस रोग में अधिक पाया जाता है, अधिक दुधारू पशुओं में यह स्थति ''मिल्कलैग'' के नाम से जानी जाती है। इस रोग के उपचार के लिए पशु आहार को विटामिन–ए, बी तथा सी के साथ–साथ खनिज लवणों से भली–भांति परिपूरित करें। गम्भीर रूप से प्रभावित पशुओं में अस्थिनिर्माण में सहायक तत्व इन्जेक्शन के रूप में दिए जाने पर भी फायदा होता है। गर्भावस्था एवं वृद्धिकाल में पशुओं को संतुलित आहार एवं खनिज मिश्रण का उपयोग करने से इस रोग को पनपने से रोका जा सकता है।

— ▯ —

जापानी बटेर - एक नया व्यावसायिक प्रारूप

श्रवण कुमार* एवं मदन पाल**

*पशु चिकित्सा विकृति विज्ञान विभाग, **पशु शल्य चिकित्सा एवं विकिरण विभाग
लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

जापानी बटेर, बटेर कुल का एक पक्षी है। यह पूर्वी एशिया में प्रजनन करता हैं जिसमें उत्तरी मंगोलिया, रूस के साखलिन बायकाल और वितिम इलाके, पूर्वोतर चीन, जापान उत्तरी कोरिया तथा दक्षिणी कोरिया शामिल हैं। कुछ प्रजाति जापान से प्रवास नहीं करती है। लेकिन अधिकतर पक्षी सर्दियों में दक्षिणी चीन, लाओस, वियतनाम कबोडिया, म्यानमार, भूटान और पूर्वोतर भारत की ओर प्रवास कर जाते हैं। जिन जगहों पर इस पक्षी का मूल निवास है, या प्रचलित किया गया है अथवा यदा कदा मिलता है वह इस प्रकार है –

मूल निवास– भूटान, चीन, भारत, जापान, कोरिया, (उत्तरी तथा दक्षिणी), लाओस, मंगोलिया, म्यानमार, रूस, थाईलैंड तथा वियतनाम।

प्रचलित किया गया– इटली, रियूनियम, द्वीप समूह तथा हवाई द्वीप (यू.एस.ए)

यदा कदा मिलना– कंबोडिया तथा फिलीपीन्स

मणिपुरी बटेर भारत में पाई जाने वाली बटेर पक्षी की एक किस्म है, जो कि पश्चिम बंगाल, असम, नागालैण्ड मणिपुर और मेघालय के दलदली इलाकों में, जहां ऊँची घास होती है, पाया जाता है। इसके आवास क्षेत्रों के संकुचित होने से या खण्डित होने से इसकी आबादी निरंतर कम होती जा रही है और इसी कारण से इसे अंतर्राष्ट्रीय प्रकृति संरक्षण संघ ने असुरक्षित श्रेणी में रखा है।

बटेर पक्षी को ही मांस खाने वालों की पसंद माना गया हैं। मांस व अंडा उत्पादन के क्षेत्र में भी बटेर पालन कर बहुत लाभ कमाया जा सकता है। जापानी नस्लों के विकास के साथ ही बटेर पालन अब व्यवसाय के रूप में देश के कई हिस्सों में तेजी से फैल रहा है। अपार संभावनाओं से भरे पूर्वांचल में व्यवसाय के रूप में इसका विकास होना अभी बाकी है।

स्वादिष्ट मांस के रूप में बटेर को बड़े ही चाव से पंसद किया जाता है। इस दिशा में ढाई दशक के लंबे प्रयास के बाद बटेर के इस पालतू प्रजाति का विकास मांस व अंडा उत्पादन के लिए किया गया है। बटेर पालन के लिए मुख्य रूप से फराओं, इंग्लिश सफेद, कैरी उत्तम, कैरी उज्जवल, कैरी श्वेत, कैरी पर्ल व कैरी ब्राउन की जापानी नस्ले हैं। शीघ्र बढ़वार, अधिक अंडे उत्पादन, प्रस्फुटन में कम दिन सहित तत्कालिक वृद्धि के कारण इस व्यवसाय का रूप तेजी पकड़ता जा रहा है।

वर्ष भर के अंतराल में ही मांस के लिए बटेर के 8–10 उत्पादन ले सकते हैं। चूजे 6 से 10 सप्ताह में ही अंडे देने लगते हैं। मादा प्रतिवर्ष 250 से 300 अण्डे देती हैं, 80 प्रतिशत से अधिक अंडा उत्पादन 9–10 सप्ताह में ही शुरू हो जाता है। इसके चूजे बाजार में बेचने के लिए चार से पांच सप्ताह में ही तैयार हो जाते हैं। एक मुर्गी रखने के स्थान में 10 बटेर के बच्चे रखे जा सकते हैं। इसके साथ ही रोग प्रतिरोधक होने के चलते इनकी मृत्यु भी कम होती है। इन सबसे महत्त्वपूर्ण यह है कि बटेर को किसी भी प्रकार के रोग निरोधक टीका लागाने की जरूरत नहीं होती है। एक किलोग्राम बटेर का मांस उत्पादन करने के लिए दो से ढाई किलोग्राम राशन की आवश्यकता होती है। बटेर के अंडे का भार उसके शरीर का ठीक आठ प्रतिशत होता हैं जबकि मुर्गी व टर्की के 1–3 प्रतिशत होती हैं। बटेर उत्पादन एक विकसित व्यवसाय का रूप ले चुका है। भारत में इसका विकास धीरे–धीरे हो रहा है। तापमान और वातावरण के हिसाब से पूर्वांचल में इसकी आपार संभावना है। इसको व्यवसायिक रूप देकर बटेर उत्पादन कर इस दिशा में अच्छी आय कमा सकते है।

जापानी बटेर को आमतौर पर बटेर कहा जाता है। पंख के आधार पर इसे विभिन्न किस्मों में बांटा जा सकता है। जैसे फराओं, इग्लिश सफेद, टिक्सडो, ब्रिटश रेज और माचुरियन गोल्डन। जापानी बटेर हमारे देश में लाया जाना किसानों के लिए मुर्गी पालन के क्षेत्र में एक नया विकल्प के साथ साथ उपभोक्ताओं को स्वादिष्ट और पौष्टिक आहार उपलब्ध कराने में काफी महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ हैं। यह सर्वप्रथम केन्द्रीय पक्षी अनुसंधान संस्थान, इज्जतनगर, बरेली में लाया गया था। यहां इस पर काफी शोध कार्य किए जा रहे हैं। आहार के रूप में प्रयोग किए जाने वाले अतिरिक्त बटेर में अन्य विशेष गुण भी है, जो इसे व्यवसायिक तौर पर लाभदायक अण्डे तथा मांस के उत्पादन में सहयाक बनाते है। यह गुण इस प्रकार है–

1. बटेर प्रतिवर्ष तीन से चार पीढ़ियों को जन्म दे देने की क्षमता रखता हैं।
2. मादा बटेर 45 दिन की आयु से ही अण्डे देना आरम्भ कर देती है और साठवें दिन तक पूर्ण उत्पादन की स्थिति में आ जाती है।
3. अनुकूल वातावरण मिलने पर बटेर लम्बी अवधि तक अण्डे देते रहते है और मादा बटेर वर्ष में औसतन 280 अण्डे तक दे सकती है।
4. एक मुर्गी के लिए निर्धारित स्थान में 8 से 10 बटेर रखे जा सकते हैं। छोटे आकार के होने के कारण इनका संचालन आसानी से किया जा सकता है। साथ ही बटेर पालन में दानें की खपत भी कम होती है।
5. शारीरिक वजन की तेजी से बढ़ोतरी के कारण पांच सप्ताह में ही खाने योग्य हो जाते हैं
6. बटेर के अण्डें और मांस में उचित मात्रा में अमीनों ऐसिड, विटामिन, वसा और धातु आदि पदार्थ उपलब्ध रहतें हैं।
7. मुर्गियों की अपेक्षा बटेरों में संक्रमण रोग कम होते हैं। रोगों की रोकथाम के लिए मुर्गी पालन की तरह इनमें किसी प्रकार का टीका लगाने की आवश्यकता नहीं हैं।

— ❑ —

LABLINE
SCIENTIFIC CORPORATION
2nd Floor, Rajindra Place, Near HDFC Bank, Hisar
E-mail : ischsr@gmail.com

हैफेड कैटल फीड प्लांट

(An I.S.O. 22000 : 2005 Certified Unit)

हैफेड आदर्श पशु आहार की विशेषताएँ

1. इसमें सभी पोषक तत्व उचित मात्रा में हैं।
2. यह पाचक, स्वादिष्ट तथा पौष्टिक है।
3. इसकों खिलाने से पशु की संतुष्टि होती है तथा ये स्वास्थ्यवर्धक हैं।
4. विभिन्न खाद्य पदार्थों को विधिवत मिश्रित किया गया है।
5. इसका खिलाना आर्थिक रूप से सस्ता है।
6. इसके अधिकृत विक्रेता हरियाणा, दिल्ली, राजस्थान व हिमाचल प्रदेश के अधिकतर गांव, कस्बों व शहरों में हैं।

हैफेड संतुलित पशु आहार खिलाने से लाभ

पशुओं को संतुलित पशु आहार खिलाने से निम्नलिखित लाभ होते है :-

1. हैफेड पशु आहार में पोषक तत्व संतुलित मात्रा में होने से पशु को जीवनयापन की सभी आवश्यकतायें पूरी हो जाती है तथा पशु को सन्तुष्टि मिलती है।
2. हैफेड संतुलित आहार खिलाने से दुग्ध उत्पादन मात्रा में वृद्विहोती है।
3. हरे चारे की उपलब्धता न होने पर पशु का पोषण विपरीत रूप से प्रभावित नहीं होता है।
4. पशु में रोग रोधक क्षमता का विकास होता है और पशु स्वस्थ रहता है।
5. पशु का प्रजनन भी समय से होता है एवं उसमें प्रजनन क्षमता बढ़ती है।
6. पशु के स्वस्थ बच्चा पैदा होता है और उसका वजन भी पूरा होता है।
7. पूरी दुग्ध उत्पादन क्षमता के अनुसार कम खर्चों पर दूध का उत्पादन होता है।

महाप्रबन्धक

हैफेड कैटल फीड प्लांट

नजदीक सुखपुरा चौक, रोहतक

01262-276709, 01262-277101

ई-मेल : cfphfdrtk@hry.nic.in

वशिष्ठ डेयरी फार्म

गाँव व डाकखाना ढाटरथ, तहसील सफीदों, जिला जींद

हरियाणा सरकार

एवं

लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार

द्वारा पुरस्कृत

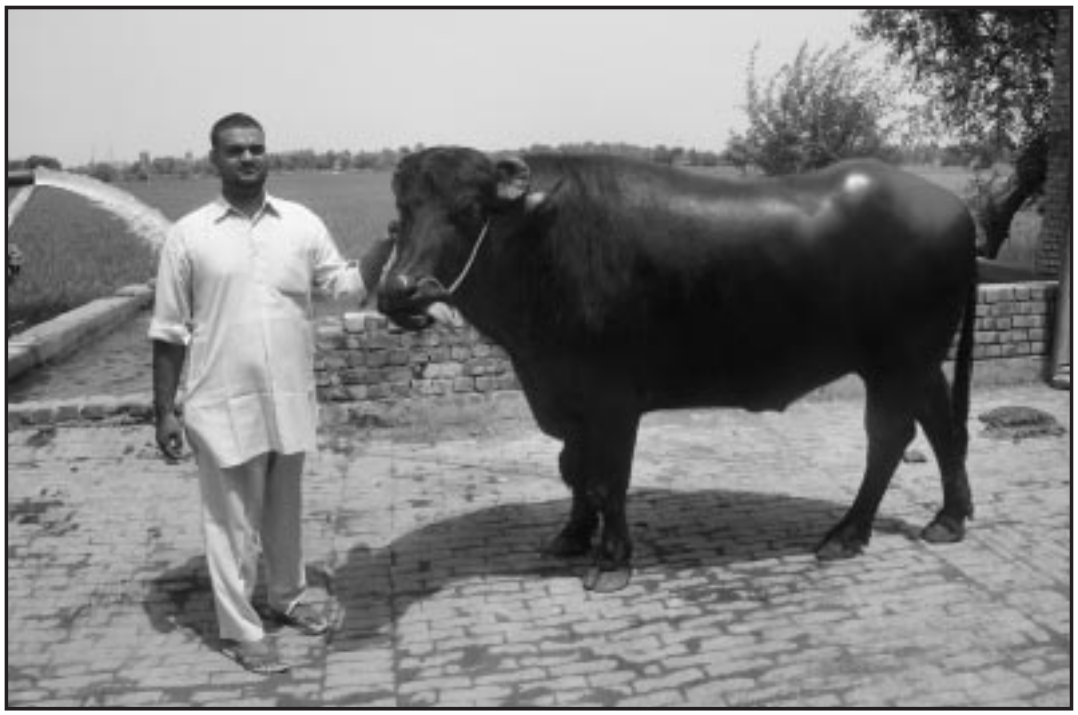

श्रेष्ठ मुर्राह नस्ल की भैंसों और कटड़े–कटड़ियों की खरीद हेतु सम्पर्क करें।

शिवचरण

शिवचरण फोन नं. 9416608130

रोहताश फोन नं. 9466890513

भूख लगाने व हाज़मे के लिए

JUGALI

Powder

जुगाली

with Amino Acid

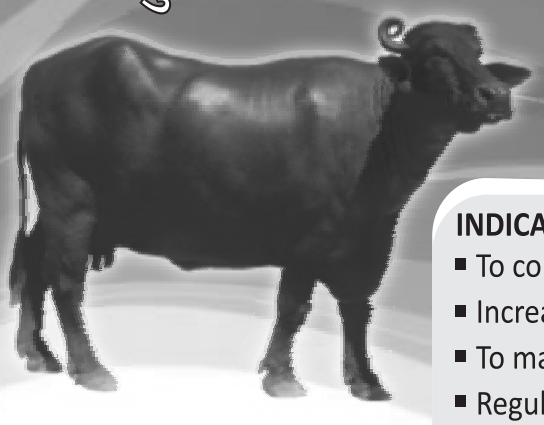

INDICATIONS :

- To correct anorexia, off feed & Indigestion
- Increases feed intake & stimulates appetite
- To maintain pH of rumen
- Regulates rumen microflora
- Quick relief in diarrhoea
- Improves fiber digestion to get maximum production
- Amino Acid in active (L-Form) for faster absorption

Presentation : 200 gm & 500 gm.

Dosage : For Large Animal : 40 gm. per day | For Small Animal : 20 mg. per day

TIFLOX-SP Ofloxacin 1200 mg. & Serratiopeptidase 75 mg. **Bolus**	**UNDO-4.5** Cefoperazone 3000 mg. & Sulbactam 1500 mg. **Injection**	**TIFLOX-DS** Ofloxacin 60 mg./ml. **Injection**	**TIFLOX-TZ** Ofloxacin 1200 mg. & . Tinidazole 2700 mg. **Bolus**
TIFLOX-OZ IU Ofloxacin 50 mg., Ornidazole 125 mg. & Urea 500 mg. **Suspension**	**SAPASAMVET** Piroxicam 10 mg., Pitofenone HCl. 2 mg. & Fenpiverinium Bromide 0.02 mg. **Injection**	**Topvet-FM** Flunixin meglumine USP 83 mg. eq. to Flunixin 50 mg. **Injection**	**XB-FORTE** Amoxycillin Sodium 3000 mg. & Sulbactam Sodium 1500 mg. **Injection**
GROW-UP Vitamin H, C, E, A, & D3 **Liquid** Vitamin A, D3, E & Biotin **Injection**	**RE-FRESH** Levamisole Hydrochloride 2 gms. & Oxyclozanide 4 gms. **BOLUS**	**AI. CONCIV POWER** **Liquid 300 ml.**	**ACTIVATE** Live Yeast Culture, Bovizyme, Sea Flora & Propionibacterium Freudenreichii **Bolus**

TITANIC PHARMACEUTICALS PVT. LTD.

Helpline No. : 8222813331